सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई-282002 (आगरा) उ.प्र.

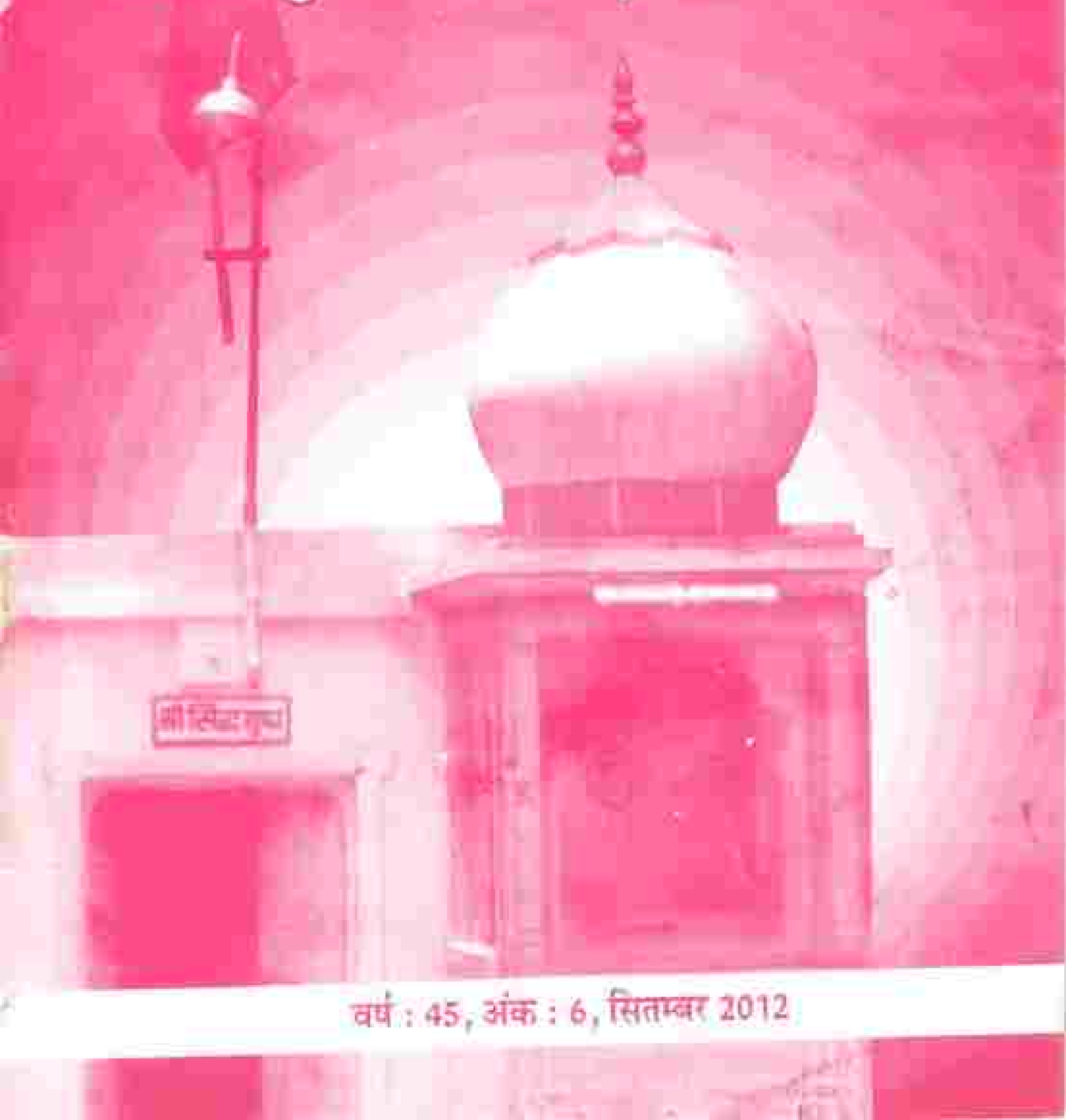

वर्ष : 45, अंक : 6, सितम्बर 2012

अमृत कण

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही समस्त उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान भावसम्पन्न पुरुष अपने (अन्य कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

γ γ γ

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

(यजुर्वेद)

जैसे परमात्मा पक्षपात न करके सभी वर्ण के प्राणियों से समान रूप से प्रीति करता है, वैसे ही हम सब मिलकर, अध्यापक विद्वान, राजकीय व्यक्ति, व्यवसायी और सेवार्थ प्रयत्न करने वाले सभी नागरिक परस्पर रुचि और प्रीति पूर्ण व्यवहार करें।

γ γ γ

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(चरक संहिता)

कार्य करते समय, तत्काल या भविष्य में, जिसका फल अशुभ अर्थात् हानिकारक हो, इसका विचार करके, ऐसा काम कदापि नहीं करना चाहिये। यह बुद्धिमानों का सिद्धान्त है।

γ γ γ

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो ज्ञानं भारः क्रिया बिना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं है उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे दुर्भग स्त्री के पास आभूषण।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :–शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 45 सितम्बर 2012 अंक : 6

श्रियं स दद्याद्भवतां,
पुरारिर्यदंगतेजःप्रसरे भवानी।
विराजते निर्मलचन्द्रिकायां,
महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ।।

अर्थात् जैसे निर्मल चाँदनी में हिमालय पर्वत की औषधियाँ सुशोभित होती हैं, उसी तरह जिनके अर्धाङ्ग में पार्वती जी विद्यमान हैं, ऐसे श्रीशंकरजी आप लोगों को श्री अर्थात् मंगल, लक्ष्मी या शोभा प्रदान करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	11
3.	पुरुषार्थ की प्रबलता बताते हुए	13
4.	गीतामृत–पदावली	15
5.	योगआसन – वातायनासन	18
6.	आत्म उद्धार की आकांक्षा – श्रीमती सुमन कुराना	20
7.	गुरुदेव तुम्हारी जय होवे – जगदीश राए बंसल	23
8.	काम, क्रोध, मद, लोभ अधोगति के मार्ग – डॉ. जे.पी. शर्मा	24
9.	श्री सद्गुरुदेव जी की अंतरयामिता – विनय मालवीय	30
10.	भजन–कव्वाली – मोतीराम गर्ग	32
11.	आध्यात्मिक संस्कार – प्रो. ऋषिराम शर्मा	33

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय सदस्यता)	: रु. 900.00

• विशेष लेख

स्थूल और सूक्ष्म के भुगतान

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने इससे पूर्व के लेख में कर्म-मीमांसा को समझा करके मनुष्य अपने प्रारब्ध कर्म विपाक को स्थूल शरीर पर कैसे भुगतान करता है और वही भोग सूक्ष्म शरीर में किस प्रकार से भोगे जा सकते हैं और कारण शरीर में उनकी निवृत्ति का क्या उपाय है ये सब बातें पूरे विवरण के साथ उदाहरणों सहित समझा चुके हैं। किन्तु इनमें से कुछ अवशेष भाग समझाना और शेष है, जिसको समझ लेना भी साधक के लिए परमावश्यक है। कुछ अभ्यासी साधक इस प्रकार के होते हैं कि इनकी कारण शरीर में तो स्थिति हो ही नहीं पाती, प्रत्युत ये सूक्ष्म शरीर में भी पूरी तरह स्थिर नहीं हो पाते। ये अभ्यासी अच्छे होते हैं किन्तु ध्यानाभ्यास में दो-चार घण्टे बैठ लिये और फिर उठ गये। इनकी वृत्ति कभी अन्तर्मुखी होती है और कभी बहिर्मुखी। इन लोगों के प्रारब्ध भोग भी सूक्ष्म और स्थूल दोनों पर एक साथ आ जाया करते हैं। कुछ भाग स्थूल शरीर पर आ जाता है और उसी ही की कुछ निष्कृति सूक्ष्म में हो जाया करती है। पर इस प्रकार की स्थिति भी उन्हीं साधकों की हो पाती है जिनको सर्वसामर्थ्यवान पूर्ण गुरु मिल जाते हैं। साधक का अन्तर्मुख होना भी साधारण बात नहीं। साधक अपने प्रयत्न से तो साधना करता-करता बहुत ही लम्बे समय के बाद संयम नियम से चलने पर अन्तर्जगत में प्रवेश कर पाता है, किन्तु उत्तम प्रारब्धवश यदि किसी को कोई पूर्ण सद्गुरु मिल जाय और वे पूर्ण कृपा करके उस पर पूर्ण शक्ति संचार कर दें तो साधक अपने अन्तर्जगत में जल्दी ही प्रवेश पा जाया करता है और उसके प्रारब्ध कर्मों का भुगतान भी उसकी स्थिति के अनुसार स्थूल या सूक्ष्म दोनों में एक साथ निबट जाया करता है। हम यहाँ एक साथ निबटने वाले भोगों को उदाहरण सहित बतलाते हैं।

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द के शरीर पर घटित घटना

मेरे बड़े गुरुभाई योगिराज श्री गोपालानन्दजी को साधक समुदाय में कौन नहीं जानता। जिस समय भाई गोपालानन्दजी का स्मरण आता है उसी समय उनके जीवन का एक यथार्थ जैसा चित्रण आँखों के सामने घूमने लगता है। मैंने अपने जीवन में कई बातें उनसे पूछीं और कितनी ही घटनायें यथार्थता के साथ घटित होती हुई देखीं। श्री गुरुगीता में एक श्लोक आता है –

यस्य देवे पराभक्ति – र्यथादेवे तथा गुरौ।
तस्य ह्येतेऽर्था – प्रकाशन्ते महात्मन:।।

अर्थात् जिसकी ईश्वर में बड़ी भारी भक्ति है और जैसी ईश्वर में है उस प्रकार की गुरु

में है तो उसको सकल अर्थ और विद्या स्वतः प्रकाशित हो जाया करते हैं। इसी उक्ति के अनुसार ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्दजी के जीवन में और उनके ध्यानाभ्यास में बिल्कुल सत्य-सत्य अनुभूतियाँ होती थीं। उन्होंने कई प्रकार की शिक्षायें अपने पूर्वज ऋषि-मुनियों से ध्यानाभ्यास में प्राप्त की थीं। वे सब शिक्षायें यथार्थ और सत्य थीं और कई एक साधकों को उन्होंने भूत और भविष्य की जो बातें बतलायीं, वे सभी पूर्णरूपेण यथार्थ निकलीं. उनकी वृत्ति कभी अन्तर्मुख रहती थी और कभी बहिर्मुख हो जाया करती थी। उनकी ऐसी स्थिति के समय की एक घटना का उल्लेख यहाँ हम करते हैं, इससे सभी साधक समुदाय भली प्रकार इस बात को समझ लेगा कि साधक के शरीर पर ध्यानाभ्यास के काल में कैसे-कैसे परिणाम होते रहते हैं।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपने ऋषिकेश आश्रम में निवास कर रहे थे। ऋषिकेश योग-साधन आश्रम का रूपक इस समय कुछ और प्रकार है और उस समय का रूपक कुछ और प्रकार का था। सामने वाले दो-चार कमरे बने हुए थे। बाकी सामने की जमीन में बहुत सुन्दर बगीचा लगा हुआ था। उस बगीचे की सिंचाई साधक समुदाय ही किया करता था। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने भाई श्री गोपालानन्दजी को आज्ञा दी कि 'बेटा तुम बगीचे की सिंचाई के लिए कुएँ से पानी खींचो।'

ब्रह्मचारीजी ने श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार बगीचे की सिंचाई करनी आरम्भ कर दी। जल कुएँ से खींचते-खींचते अकस्मात् एक घटना घटित हुई। ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी ने जल्दी-जल्दी जल के कनस्तर कुएँ से लाने आरम्भ कर दिए। अकस्मात् उनके हाथ से लोहे की भौनी जिस पर रस्सी लगी रहती है, वह छूट गई। उस भौनी में एक लम्बी कील लगी रहती थी। वह कील श्री गोपालानन्दजी के हाथ को फाड़ती हुई चली गई। उनका हाथ अँगूठे की जगह से लेकर कोहनी तक काफी फट गया। सभी लोगों को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि इतने बड़े योगी-ध्यानी का यह हाथ क्यों फट गया? सांसारिक आँखों से देखने वाले कई एक गृहस्थ परिवार वहाँ उपस्थित थे। उन लोगों ने कहा – हम सांसारिक लोग हैं, हम पर आपत्तियाँ आयें तो आयें, किन्तु यहाँ पर तो भीतर-बाहर की जानने वाले इतने बड़े योगियों पर भी आपत्ति आ रही है। इस प्रकार से तो हम संसार वाले ही अच्छे हैं। हम सांसारिक लोग दुनिया में रहते हुए बिजनेस-व्यापार करते हुए दुःख-सुख भोगते रहते हैं और ये लोग खूब योग-ध्यान और समाधि परायण होते हुए भी दुःख भोगते हैं तब इनमें और हमारे में क्या अन्तर है?

अन्त में यह प्रश्न श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के चरणारविन्द में निवेदन किया गया कि हे प्रभो! ऐसा हुआ तो क्यों हुआ? श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया – अरे भई तुम लोग इन बातों को नहीं समझते हो, यह कोई कठोर भुगतान था जो मिट गया है और इसकी जिन्दगी बच गई, पर प्रभुजी के इस कथन से लोगों के मन को विश्वास नहीं हुआ। वे सभी एकांत में परस्पर कहने लगे कि यह तो कहने की बात है। ऐसा तो कहना ही पड़ता है और चारा भी क्या है बहकाने का

तरीका यह है ही। चलो ठीक है हमें क्या मतलब? जो हो रहा है ठीक हो रहा है। इसको तो वह परमात्मा ही जाने कि यह र. तेन भोग था या आपत्ति थी। अन्ततः धीरे–धीरे ये चर्चायें श्री प्रभुजी तक पहुंचाई गई।

उन दिनों हमारे ध्यानाभ्यासी गुरु भाई–बहिन अच्छे और ऊँचे अभ्यासी होते थे वे लोग अपने ध्यानाभ्यास में जिस किसी भी बात की यथार्थता जानना चाहते, उसको यथार्थ रूप से जान लिया करते थे। उनको श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी कि तुम सब लोग हमें क्या कह रहे हो? यदि इसकी यथार्थता को जानना चाहते हो तो स्वयं ध्यान में बैठो और इसके पिछले संस्कारों को देखो और पता लगाओ कि इसके साथ यह घटना क्यों और कैसे घटित हुई?

आनंदकन्द श्रीप्रभुजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके अच्छे–अच्छे अभ्यासी सभी ध्यान में बैठ गये। उन लोगों ने ब्रह्मचारी गोपालानन्द के उस कठिन कर्म–विपाक का पता लगाया। उन लोगों ने ध्यान में देखा कि ब्रह्म. गोपालानन्द का पिछला जन्म गौघाट पर मथुरा में था। उनका उस जन्म का नाम श्री रामनारायन पाण्डेय था। ये गऊघाट पर रहते थे, इनकी आय का साधन कथावाचन आदि था। इनकी धर्मपत्नी बहुत ही सुन्दर, सती एवं पतिव्रता थी। वह देवी तो पतिपरायणा थी, किन्तु इनके मन में भ्रांतियाँ रहती थी और अपनी पत्नी पर शंका करते थे कि कहीं यह इधर–उधर किसी और से प्रेम न रखती हो। इसलिए उसकी सुरक्षा के लिए बहुत ही सावधान रहते थे। यहाँ तक कि घर से दूर जाने वाले अपने कथाप्रवचन आदि को छोड़ दिया करते थे. एक दिन किसी बहुत ऊंचे करोड़पति घराने के परिवार में इनको कथा–प्रवचन के लिए आमन्त्रण मिला। वे लोग श्री सत्यनारायण जी की कथा उनसे कहलवाना चाहते थे।

श्री रामनारायन पाण्डेयजी के सामने यह बहुत बड़ी विषम समस्या आ खड़ी हुई। यदि धनिक महोदय का निमंत्रण छोड़ देते हैं तो प्रचुर आय हाथ से जाती है। वे निश्चय ही किसी और पण्डित को बुला लेते और वह पण्डित सदा के लिए अपना प्रभाव वह कायम कर लेता उधर तो यह समस्या और इधर धर्मपत्नि को यदि अकेली छोड़कर जाते हैं तो मानस भ्रांतियाँ दुःखी करेंगी कि यह किसी और के पास चली जावे। यह जटिल समस्या सामने आने पर श्री रामनारायन पाण्डेय जी ने फिर विचार किया कि मैं अपनी धर्मपत्नी को घर के इतने काम बतला दूँ कि वह मेरे लौटने तक पूरे–पूरे काम कर ही न पाये। ऐसा करने से इसको इधर–उधर जाने का समय नहीं मिल पायेगा और बरबस घर में इसे रुका रहना पड़ेगा। उन्होंने ऐसा ही किया। वे अपनी पत्नी को काफी मात्रा में काम बतला करके उन धनिक महोदय के यहाँ कथा–प्रवचन आदि करने के लिए चले गये। वहाँ जा करके श्री इन्होंने यज्ञादि के कर्मकाण्ड के कार्यों को जल्दी–जल्दी करके वहाँ से जल्दी लौटने की चेष्टा की।

सेठजी ने कहा – पण्डितजी, क्या बात है आप तो बहुत ही जल्दी कर रहे हो? पंडित जी ने सेठजी को खुश करने के लिए कहा – नहीं–नहीं सेठजी ऐसी कोई बात नहीं है, यह तो मेरे यजमान का घर है, यहाँ से मैं जल्दी क्यों जाऊंगा? इतना कहने के बाद भी पंडित जी को जल्दी

थी। वे जल्दी–जल्दी वहाँ के काम को निबटा करके अपने घर आये तो अपनी पत्नी को घर के कामों में संलग्न देखा। उनकी धर्मपत्नी अपने घर के कुँए के पास बैठकर बर्तन आदि मांजने का काम कर रही थी। उसके पतिदेव रामनारायन पाण्डेय ने पूछा – क्या तुमने घर के सभी कामकाज कर लिये। उसने कहा – हाँ पतिदेव! जिन–जिन कामों की आप आज्ञा दे गये थे, मैंने वे सभी काम कर लिये हैं। गऊ को पानी आदि भी पिला दिया है, किन्तु मैं अभी तक गऊ के लिए कुट्टी नहीं काट पाई। इतना कहने पर श्री रामनारायन पाण्डेय को क्रोध आ गया और उन्होंने अपनी पत्नी को डांटते हुए कहा कि 'तूने अभी तक गऊ के लिए कुट्टी नहीं काट पाई? क्यों नहीं, मैं तेरी ही कुट्टी काट दूँ।' उस समय उसकी पत्नी कुँए की दीवार पर अपना हाथ रखकर बैठी थी। रामनारायन पाण्डेय ने अपनी पत्नी के हाथ पर जोर से गड़ासा मार दिया और वह हाथ कटकर कुँए में गिर गया। उसके फलस्वरूप उसकी पत्नी भी तड़प–तड़प कर थोड़ी देर बाद मर गई।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने ध्यान में बतलाया कि उसी कठोरतम कर्म के कारण इसका हाथ भी इसी प्रकार से कटना था और यह उससे भी बुरी तरह से तड़प कर मरता, किन्तु यह विवेक–ख्याति की ओर है। इसलिए उसका भुगतान सूक्ष्म होकर स्थूल में भुगत गया है। सभी अच्छे ध्यानियों ने ध्यान से उठकर यही घटना बतलाई। इतने पर भी लोगों के लिए शंका बनी रही कि पता नहीं, यह घटना सच भी है या नहीं, या केवलमात्र स्वप्न है। इतने पर श्रीप्रभुजी ने आज्ञा दी कि यदि अब भी तुम्हारे मन में शंका है तो तुम मथुरा चले जाओ और वहाँ जाकर मुहल्ला गऊघाट पूछ करके रामनारायन पाण्डेय का पता लगाओ और यह भी पता लगाना कि उसी स्त्री की मृत्यु कैसे हुई? अब हमारे गुरु–भाई लोगों ने जा करके घटना का पता लगाया तो वह घटना बिल्कुल यथार्थ निकली।

यह था सूक्ष्म और स्थूल पर इकट्ठा भुगतान। जो अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों स्थितियों में रहने वाले साधकों पर घटित हुआ करता है।

एक और घटना

रोहतक शहर के पास हरियाने में एक पहरावर गाँव है, जो रोहतक शहर से केवल 5 या 10 मील की दूरी पर है। वहाँ पर उस गाँव में एक बार हमारा योग–प्रचार कार्यक्रम चला। वहाँ कितने ही साधकों ने योग–दीक्षायें लीं और वे लोग ध्यानाभ्यास करने लगे। उस समय के प्रचार–क्षेत्रों में बहुत अधिक भीड़भाड़ नहीं हुआ करती थी। अतः साधकों को अभ्यास करने का समय अच्छा मिल जाया करता था। वहाँ पर एक साधक की ध्यान–स्थिति बहुत ही ऊँची बढ़ी, उसका नाम ध्वजाराम है। उसने अपने ध्यानाभ्यास में देखा कि एक कालासर्प है और वह उसकी ओर मुँह फैलाये बैठा है। साथ ही ध्यान में श्री प्रभुजी दिखलाई पड़े। श्री प्रभुजी ने उस साधक से कहा कि होनहार बलवान है। यह काला सर्प ही तुम्हारा काल है। आज से दो दिन बाद यह तुम्हें काट खायेगा और इसके काटने पर तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। किन्तु तुम विवेक–ख्याति

की ओर हो, इसलिए मौत से तुम्हारी रक्षा कर ली जायगी। किन्तु भुगतान अवश्य भुगतेगा। इसलिए दो रोज तुम बराबर ध्यान में ही बैठे रहो। ताकि उस घोर आघात से बच सको।

ध्वजाराम ने श्री प्रभुजी से पूछा कि हे प्रभो! यह सर्प मुझे किस रोज काटेगा? तो श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया यह तुम्हें परसों काट खायेगा, हटाया नहीं जा सकता। संस्कार प्रबल है। ध्वजाराम ने ध्यान में यह सब कुछ देखकर अपनी सुरक्षा के लिए महाराजा परीक्षत की तरह से पूरा-पूरा प्रबन्ध किया। ध्वजाराम ने सर्प काटने वाले दिन अपने कमरे में एक मेज लगा ली उसके ऊपर वह बैठ गया। कमरा काफी लम्बा-चौड़ा था। मेज से दो-दो, तीन-तीन फुट पर जलती आग के कंडे रख दिए। कमरे के सुराख वगैरह बन्द कर दिए। फिर भी उसने विचार किया कि मैं खूब ऊँची मेज पर बैठा ही हूँ। पहले तो कमरे में सर्प आयेगा ही नहीं, आ गया तो वह आग में जल जायेगा और यदि आग से भी बच गया तो ऊँची मेज पर कैसे चढ़ेगा? आदि-आदि ऊँचे-ऊँचे संविधान उसने बना लिये। परन्तु होनहार अपना काम कर ही लेती है। ध्वजाराम के इस प्रकार बैठ जाने के बाद उसके गांव के कुछ लोग उसके पास इकट्ठे हो करके आये। उन्होंने आकर कहा कि भाई ध्वजाराम! यह तू क्या कर रहा है? क्या कोई अनुष्ठान कर रहा है या कोई यंत्र-मंत्रादि सिद्ध कर रहा है? ध्वजाराम ने जो कुछ भी ध्यान में देखा था, गाँव वाले अपने साथियों के सामने ज्यों का त्यों बतला दिया। श्री प्रभुजी ने जो आदेश दिया था वह सब कहकर समझा दिया। किन्तु गाँव वाले उसके पास खास काम से आये थे। उन्होंने खेतों में कुछ निशान लगवाने थे, नाली आदि निकालनी थी।

ध्वजाराम पढ़ा-लिखा लड़का था, इसलिए गाँव वालों ने आग्रह किया कि भई तू यहाँ से उठ और गढ़ा जरीब लेकर हमारे साथ चल और खेतों में निशान लगा। ताकि हम नाली निकाल लें और खेतों में पानी लगाकर अपने धान आदि लगा लें। इस प्रकार के स्वप्नों में आने वाले सांप कहीं किसी को खाया नहीं करते। तू गढ़ा जरीब लेकर हमारे साथ चल, हम बीस आदमी तेरे साथ चलेंगे। कदाचित कोई सर्प आ भी गया तो उसको हम तेरे पास तक नहीं आने देंगे। तेरे पास आने से पहले ही हम उसे मार देंगे। ध्वजाराम को बाध्य करके वे लोग अपने साथ ले गये और खेतों में जा करके जरीब गढ़े से नाप-तौल करके ध्वजाराम ने खेतों में निशान आदि लगाने आरम्भ कर दिये। ध्वजाराम ने कस्सी उठा करके एक मेंड़ को काटने के लिए कस्सी अर्थात् फावड़ा चलाया वहीं काला सर्प जो दो दिन पहले उसने ध्यान में देखा था बड़ी तेजी से निकल आया और उस सर्प ने ध्वजाराम के दाहिने पैर की उंगली में काट खाया। सर्प के काटते ही ध्वजाराम को तत्काल मूर्च्छा आ गई और सारे शरीर में विष छा गया। सभी गांव वालों ने अपनी आँखों इस घटना को देखा और कहने लगे कि अरे भाई हमने बड़ी भारी भूल की। हम तो इसके योग-ध्यान को स्वप्न ही समझते थे, किन्तु यह बात तो बिल्कुल सच्ची निकली। अच्छा अब इसे उठाओ और गाँव में ले चलो। इसका कोई इलाज वगैरह कराओ ताकि बेचारे के प्राण तो किसी तरह से बच जायें।

उधर ध्वजाराम की उस बेहोशी में श्री प्रभुजी तत्काल उसके सामने आ गये और अपने हाथों से एक जड़ी उखाड़ कर उसको खिलादी, पानी में घोट कर भी पिला दी और कह दिया कि अब तुम कोई और उपचार न करना। कल तक तुम्हारे शरीर का यह सारा विष अपने आप दब आयेगा। कोई और उपचार किया तो बहुत विलम्ब हो सकता है। किन्तु ध्वजाराम बिल्कुल बेहोश था। उसके साथी लोग उसको यथा–तथा उठाकर गाँव में ले आये। उन लोगों ने अपने मनमाने उपचार करने आरम्भ कर दिये। परिणाम यह निकला कि ध्वजाराम के शरीर का वह विष उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। शरीर सब नीला पड़ गया। लाचार होकर घर वालों ने उसको अन्तिम समय की प्रतीक्षा में जमीन पर रख दिया। ध्वजाराम की ऐसी हालत को देख करके उसकी माता भी दहाड़ दे–देकर रोने लगी। एवम् श्री प्रभुजी के चित्र के सामने प्रार्थना करते–करते गिर पड़ी। बेहोशी में उसकी माताजी ने देखा कि श्री प्रभुजी ध्वजाराम को फिर वही जड़ी पिला रहे हैं और उसकी माता से कह रहे हैं कि देवी अब कोई और उपचार नहीं करना, ध्वजाराम दो घण्टे बाद बोल उठेगा और धीरे–धीरे इसके शरीर का सारा विष अपने आप उतर जायेगा। बेहोशी के बाद जब ध्वजाराम की माँ की आँखें खुलीं तो उसने सभी से कह दिया कि मेरे बेटे को कोई भी दवाई मत पिलाओ। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी की कृपा से अगर यह बचा तो बच जायेगा, अन्यथा जा तो रहा ही है। ध्वजाराम की माता के हठात् बार–बार कहने से गाँव के लोगों ने ध्वजाराम के अन्य उपचार छोड़ दिये। उसके बाद श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के कथानुसार ध्वजाराम स्वयं ही बोल उठा और कह दिया कि कोई चिन्ता मत करो अब मैं बच गया हूँ। श्री प्रभुजी मेरे पास बैठे हैं और वही मुझे बचा रहे हैं।

इस प्रकार ध्वजाराम के शरीर का सारा विष उतर गया और दो–तीन दिन के बाद वह घर के सभी काम संभालने लग गया। यह घटना लगभग तीस या पैंतीस वर्ष पहले की हो चुकी है। ध्वजाराम अभी तक पूर्ण–रूपेण स्वस्थ है और अपने कामों में संलग्न है। यह घटना भी स्थूल और सूक्ष्म के मिले–जुले भुगतान की परिचायक है। इस प्रकार जो लोग योग ध्यान परायण बने रहते हैं वे अपने घोरतम संकटों को निबटा कर खत्म कर देते हैं और अपने जीवन को सुखी बना लेते हैं।

वीतराग पुरुषों के ध्यान का परिणाम

शास्त्रीय परिभाषा में समाधि का अर्थ है –

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि।।

– योगदर्शन

अर्थात् जिसके चिन्तन करने में जिसका हम ध्यान कर रहे हैं वही–वही भासित होता रहे, साधक को अपने स्वरूप का भी ज्ञान न रहे, यदि ज्ञान रहे तो केवल मात्र एक ही कि ध्याता अपने आपको ध्येयाकार में परिवर्तित देखता रहे और अपने स्वरूप का आभास तक न रहे, इसी का नाम समाधि है। वीतराग पुरुषों का ध्यान करने वाले साधक जब अपने आप को उनके

स्वरूप में लय कर डालते हैं तो उसकी अपनी स्वरूप सत्ता भी नहीं रहती। ऐसा साधक समाधि अवस्था में देखता है कि—

शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवकेवलोऽहम्।।

अर्थात् मैं स्वयं ही शिव हूं, केवल मैं शिव ही हूं, मुझ से अलग और कुछ भी नहीं है। ऐसा साधक तद्‌रूपता को प्राप्त करके अपने आपको व्यापक सत्ता में विलीन देखने लगता है। वह देखने लगता है—

सर्वभूतस्थानात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि, ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।

अर्थात् प्राणिमात्र के अन्दर अपने आपको और प्राणिमात्र को अपने अन्दर केवलमात्र योगयुक्त योगी ही देखता है, अन्य कोई भी देख नहीं पाता। ऐसी स्थिति में साधक अपने आपको उस व्यापक सत्ता में बिलकुल विलीन देखता है। ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाने के बाद साधक का कोई भी कर्म अवशेष नहीं रहता। हृदय—ग्रन्थि का भेदन होकर सभी प्रकार का कर्म—बंधन क्षय हो जाता है। सब संशय नाश हो जाते हैं, उसके लिए कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती। इसी प्रकार की एक और घटना एक साधक की हम यहाँ पर बतलाते हैं—

यह साधक मलावन गाँव जिला एटा का है। उसकी अपनी योग—स्थिति ठीक इसी प्रकार की थी, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। साधकों के अनिष्ट को दूर करने वाले केवलमात्र सद्‌गुरुदेव ही हैं। वे अन्तरात्मा में अवस्थित हो करके उत्तरोत्तर भूमिकाओं को प्रगट करते रहा करते हैं। मलावन गाँव का यह साधक वीतराग पुरुष भगवान् विष्णु के स्वरूप में अपने आपको हर समय लय देखने लगा। एक बार इसको ध्यानावस्था में श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी कि तुम तीन दिन के अन्दर भोग में आने वाले अपने कर्म—विपाक को देखो। श्री प्रभुजी की आज्ञा को पाकर जब उसने तीन दिन के समय के अन्दर भोग में आने वाले कर्म—विपाक को देखा तो एक सर्प के काटने के संस्कार को देखा और यह भी उसने पता लगा लिया कि इस सर्प के काटने का भोग काल दोपहर के समय 11 बजकर 5 मिनट पर है। उसने ध्यानावस्था में ही श्री प्रभुजी से पूछा कि हे प्रभो! क्या मैं किसी प्रकार इस क्लिष्ट संस्कार से बच सकता हूँ अथवा नहीं बच सकता। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि यह बात तुम्हारी लयता पर आधारित है। तुम ग्यारह बजे से कुछ समय पहले ही समाधि में बैठ जाना। यदि तुम्हारी समाधि प्रगाढ़ हो गई और लयता पा गये तो तुम्हें सर्पदंश का भोग नहीं होगा अन्यथा अवश्य होकर ही रहेगा।

यह बच्चा श्री आनन्दकन्द प्रभुजी की अपार कृपा से कई—कई घण्टे तक लगातार समाधिस्थ रहता था। उस दिन भी उसने यह सर्पदंश वाली सब बातें अपने छोटे भाई को बतला दीं और उस छोटे भाई से कह दिया कि तुम यहां बैठकर देखते रहना कि क्या कोई सर्प इस कमरे में से कहीं से निकल कर मेरे पास आता है या नहीं। यह कह करके वह साधक बच्चा समाधि में बैठ गया और अपने छोटे भाई को सर्प को देखने के लिए उस कमरे में बैठा दिया।

समाधि में बैठे हुए उसके भाई को जब ग्यारह बजकर पांच मिनट हो गए तो उसके भाई ने देखा कि उस कमरे की कोने वाली दीवार के एक सूक्ष्म छिद्र से एक काला सर्प निकला। वह तेजी से इधर-उधर चलता हुआ ठीक ग्यारह बजकर पांच मिनट के समय पर उसके समाधि में बैठे हुए भाई के शरीर पर चढ़ गया। लगभग पांच या सात मिनट तक उसके शरीर पर ही घूमता रहा और फुंकार मारता रहा किन्तु काटा नहीं। इस प्रकार लगभग सवा ग्यारह बजे तक वह सर्प इधर-उधर घूम करके अपने उसी बिवर में घुस गया।

इस घटना के घट जाने के लगभग एक घण्टे के बाद उस साधक बच्चे की समाधि खुल गई। समाधि खुलने के बाद उसने अपने छोटे भाई से पूछा कि क्या यहाँ कोई सर्प आया था? छोटे भाई ने अपने बड़े भाई से हाथ जोड़कर कहा कि भाई सर्प क्या आया था, वह तो बिल्कुल तुम्हारा काल ही आया था। जो थोड़ी देर तक तुम्हारे शरीर पर घूम करके इस दीवार के साथ वाले बिवर में प्रवेश कर गया है। इस सब घटना को जान करके उस ध्यानी साधक ने ध्यान में श्री प्रभुजी से पूछा कि हे प्रभो! मैं इस सर्प के कठोर दंश से किस प्रकार बच गया। कृपा कर यह बात मुझे समझा दीजिए।

श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि बेटा! उस समय तुम भगवान विष्णु के स्वरूप में लय थे। सर्प ने तुम्हें काटना था न कि भगवान विष्णु को। अब तुम्हारा यह संस्कार कट गया है, अब जिन्दगी भर तुम आराम से रहोगे। अब तुम्हारे पास सर्प बिल्कुल नहीं आयेगा।

यहाँ पर वही शास्त्रीय सिद्धान्त लागू है जिसमें कहा गया है कि –

भिद्यते हृदय ग्रन्थि, छिद्यन्ते सर्व संशया:।
क्षीयन्ते सर्व कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे।

अर्थात् उस नजदीक से नजदीक और दूर से दूर व्यापक रहने वाली सत्ता में विलीन रहने वाले योगियों के क्लिष्टाक्लिष्ट संस्कार स्वत: ही खत्म हो जाते हैं और उनकी हृदय ग्रन्थि स्वत: ही खुल जाती है और उनके ऊपर कोई भी कर्म अवशेष नहीं रहता है? यह कर्म-बन्धन क्षय का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इन लेखों को पढ़कर साधक लोगों को चाहिए कि वे अपने आपको अन्तर्जगत में प्रवेश करायें और परम-कल्याण समाधि पद को प्राप्त करके अपने को कृतकृत्य बना डालें।

● ● ●

योग से होता है दुःखों का निवारण

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

मनुष्य जीवन में प्रारम्भ से अन्त तक दुःख ही दुःख है। जन्म लेना, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा बीमारी अवश्यम्भावी दुःख है। दुःख झेलते–झेलते मनुष्य दुःख को ही सुख मानने लगता है। यही अज्ञानता कही गई है। भगवान ने विभिन्न रूपों में मनुष्य पर कृपा करके ऋषियों के द्वारा दुःखों के निवारण के लिए योग विद्या को पृथ्वी तक पहुँचाया है। गीता में भी भगवान् श्री कृष्ण चन्द ने अर्जुन को समझाते हुए कहा है – 'तं विद्यात् दुःख संयोग वियोगम् योग संज्ञितम्' अर्थात हे अर्जुन ! दुःखों के विनाश के लिए योग विद्या को जानकर उसे जीवन में अपनाना चाहिए। योग का अभ्यास लम्बे समय तक करना चाहिए तभी अभीष्ट लाभ मिल पाता है। गीता में ही कहा है – 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' तीनों लोकों में योगाध्यात्म ज्ञान के समान पवित्र करने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकार से वेदों में भी योग विद्या की बहुत महिमा गायी गई है।

योग क्रियात्मक तथा विचारात्मक दोनों प्रकार से अभ्यास में लाया जाता है। यम–नियम आदि ऐसे योगांग है जिनको बैठकर नहीं करना होता है यह विचारात्मक एवं संकल्प से होते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है उसे समाज में रहना होता है। समाज में रहते हुए उसे अपने सुख के साथ–साथ दूसरे के सुख का भी ध्यान रखना होता है। इसीलिए हमारे देश में 'जीओ और जीने दो' का आदर्श बना हुआ है। *Live and let live.* यम नियम का सिद्धान्त दूसरों के हित के साथ–साथ अपनी आत्म शक्ति के संवर्धन का उपाय भी है। यमों की (सत्य, अहिंसादि) की साधना का अद्‌भुत फल पतंजलि–योग शास्त्र में बतलाया गया है।

प्रायः साधकों में दो प्रकार की निष्ठा देखने में मिलती है। कुछ साधक आत्मनिष्ठ होते है। आत्म तत्व के बारे में पढ़कर व सुनकर वे इसी तत्व के शोध व अनुसन्धान में लगे रहते हैं। ऐसे योग साधकों को ज्ञान–मार्गी साधक कह सकते है। दूसरी श्रेणी के साधक भक्ति–मार्गी होते है। वे इष्टदेव को ही सब कुछ मानते है और उन्हीं के परायण रहते हैं। अनुकूल–प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में ये लोग इष्ट के स्मरण में मग्न रहा करते हैं। इस प्रकार से साधक अपनी निष्ठा को परिपक्व बनाता है। यह परिपक्वता एक दिन में नहीं आती, वर्षों के चिन्तन के बाद आती है। साधक चाहे आत्मनिष्ठा वाला हो या इष्टनिष्ठा वाला उसे प्रतिदिन ध्यान में अवश्य बैठना चाहिए। एकाग्रतापूर्वक ध्यान से आत्म शक्ति का संवर्धन होता है। जैसे मोबाइल की बैटरी प्रतिदिन ही चार्ज करनी होती है इसी तरह से जाप व ध्यान से आत्म–शक्ति का विकास करना होता है। योग की उच्चतर भूमिकाओं को प्राप्त करने के लिए तो साधक को दो से तीन घण्टे तक

ध्यान में बैठना ही चाहिए। किन्तु आज के मनुष्य में देर तक समकाय शिरोग्रीव होकर बैठने की क्षमता नहीं रह गई है। ऐसे में 'अकरणात् करणम् श्रेयः' के नियम से कुछ न करने से कुछ करना अच्छा है इसलिए साधक विचार–योग के द्वारा भी साधना को जारी बनाये रख सकता है। जो लोग चलते–फिरते, उठते–बैठते चिन्तन व जाप करते रहते हैं, इष्ट से जुड़े रहते हैं, यह जुड़े रहना भी सहज योग है।

भगवान ने गीता में अर्जुन को युद्ध भूमि में आज्ञा दी है – तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च'' हे अर्जुन! तू हर समय मेरा चिन्तन करता चल और युद्ध भी कर। इस प्रकार से शुभ या शुद्ध विचार से इष्ट का चिन्तन, स्वरूप का बिम्ब हृदय में बना रहे तो साधक का उत्तरोत्तर विकास होता है। इससे सात्विक बढ़ती है और साधक को इष्टदेव के दर्शन होने लगते हैं। इष्टदेव का दर्शन होना पुण्य फल का सूचक है। आत्म–निष्ठ साधकों को प्रकाश व ज्योति के दर्शन होते हैं जो कालान्तर में समाधि के रूप में परिवर्तित हो जाया करता है। जिन साधकों को देवी–देवताओं के दर्शन न होकर शुभ्र–प्रकाश में लयता रहती है वे उच्चकोटि के साधक होते हैं उनका ध्यान कारण शरीर में लगता है। इस प्रकार से साधक को अपने मन को प्रसन्न रखना चाहिए। इससे अध्यात्म–पुष्ट होता है। साधक को ध्यान–अभ्यास के अतिरिक्त समय में अध्यात्म–योग शास्त्र का स्वाध्याय व मनन करते रहना चाहिए तथा उत्कृष्ट योग साधकों के साथ बैठकर सत्संग व सद्चर्चा करनी चाहिए। कुसंग का सर्वथा परित्याग करना चाहिए। विषय–लोलुप व्यक्ति योग मार्ग में सफल नहीं हो सकता –असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः' श्री कृष्णचन्द्र भगवान् गीता में कहते हैं कि जो व्यक्ति संयमी नहीं है उसे योग में सफलता नहीं मिल सकती है।

ध्यान–योग एवं स्वाध्याय से क्लिष्ट कर्म संस्कार सूक्ष्म में ही भुगतान में आ जाते हैं अथवा आत्म–स्थिति उच्चतर होने की अवस्था में फल देने में असमर्थ होकर नष्ट हो जाया करते हैं। योग मार्ग की पढ़ाई भी लौकिक पढ़ाई की तरह ही है। क्रम से साधक अपने मार्ग में आगे बढ़ता है। यह पढ़ाई संस्कारों के शोधन की पढ़ाई है। कई–कई जन्मों के अभ्यास के बाद पुण्य के प्रबल संस्कार बन पाते हैं और साधक पवित्रात्मा बनकर अन्तर्जगत् का धनी बन पाता है। इसलिए जैसा भी बन सके, निरन्तरता से अपने मार्ग में लगे ही रहना चाहिए। गुरुदेव की करुणा कृपा एवं पुरुषार्थ से उत्तरोत्तर उत्कर्ष को साधक पा ही जाता है। आत्म लाभ को पा जाता है।

● ● ●

पुरुषार्थ की प्रबलता बताते हुए दैव के स्वरूप का विवेचन तथा शुभ वासना से युक्त होकर सत्कर्म करने की प्रेरणा

(साभार योग वाशिष्ठ से)

श्री वशिष्ठ जी कहते हैं – श्रीराम! बताओ तो सही, इस लोक में जो शूरवीर, पराक्रमी, बुद्धिमान और पण्डित हैं वे किस दैव की प्रतीक्षा करते हैं? इन महामुनि विश्वामित्र जी ने दैव को दूर से ही त्याग कर पौरुष से ही ब्राह्मणत्व प्राप्त किया है और किसी साधन से नहीं। हमने तथा दूसरे–दूसरे पुरुषों ने, जो इस समय मुनि–पदवी को प्राप्त हैं, चिरकाल तक किये गए पौरुष से ही आकाश में विचरण करने की शक्ति प्राप्त की है। हिरण्यकशिपु आदि दानवेन्द्रों ने पुरुषोचित प्रयत्न से ही देव समुदाय को दूर भगाकर त्रिलोकी का साम्राज्य प्राप्त किया था। फिर इन्द्र आदि देवेश्वरों ने पुरुषोचित प्रयत्न से ही शत्रु सेना को छिन्न–भिन्न एवं जर्जर करके दानवों से बलपूर्वक इस विशाल जगत का राज्य छीन लिया था।

श्री राम ने पूछा – भगवन्! आप सब धर्मों के ज्ञाता हैं। ब्रह्मन्! लोक में जो बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है, वह दैव क्या है? किसे दैव कहते हैं, यह बताइये।

श्री वशिष्ठजी ने कहा – रघुनन्दन! अवश्यम्भावी फल से सुशोभित होने वाले पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त हुए फल का जो शुभ और अशुभ भोग है, उसी को दैव शब्द से कहा जाता है अथवा पौरुष द्वारा इष्ट और अनिष्ट कर्म का जो प्रिय और अप्रियरूप फल प्राप्त होता है, उसी को दैव कहते हैं। एक मात्र पुरुषार्थ से सिद्ध होने वाला जो अवश्यम्भावी फल है वही इस जनसमुदाय में दैव शब्द से प्रतिपादित होता है। सिद्ध पुरुषार्थ के शुभ और अशुभ फल का उदय होने पर जो यह कहा जाता है कि यह इसी रूप में मिलने वाला था – यही होनहार थी, इसी को दैव कहते हैं। कर्मफल की प्राप्ति होने पर जो यह कहा जाता है कि 'ऐसी ही मेरी बुद्धि हुई थी, ऐसा ही मेरा निश्चय था, इसी का नाम दैव है। इष्ट और अनिष्ट फल के प्राप्त होने पर जो आश्वास–मात्र के लिए यह कहा जाता है कि 'मेरा पूर्वजन्म का कर्म ही ऐसा था इस तरह की भावना को व्यक्त करने वाला वचन ही दैव कहलाता है। श्रीराम! मनुष्यों के मन में पहले जो अनेक प्रकार की वासनाएँ थीं वे ही इस समय कायिक, वाचिक, कर्मरूप से परिणत हुई हैं। जीव में जिस प्रकार की वासना होती है वह शीघ्र वैसा ही कर्म करता है। मन में वासना और ही और वह कर्म किसी और प्रकार का करे यह सम्भव नहीं। जो गाँव में जाने की इच्छा रखता है, वह गाँव में और जो नगर में जाना चाहता है, वह नगर में पहुँचता है। जो–जो मनुष्य जिस–जिस वासना से युक्त होता है, वह उसी–उसी के लिए सदा प्रयत्न करता है। पूर्व जन्म में फल की उत्कट

अभिलाषा होने से जो कर्म प्रबल प्रयत्न के द्वारा किय जाता है, वही इस जन्म में 'दैव' शब्द से कहा जाता है। पूर्व जन्म के उस कर्म का पर्यायवाची शब्द 'दैव' है। कर्म करने वालों के सभी कर्म इसी रीति से होते हैं। अपनी प्रबल वासना ही कर्म है। वासना मन से भिन्न नहीं है और मन ही पुरुष है अर्थात् पुरुष का संकल्प होने से वह पुरुष रूप ही है। मन आदि भाव को प्राप्त हुआ वह प्राणी ही अपने हित के लिए जो–जो प्रयत्न करता है, 'दैव' नाम से प्रसिद्ध अपने उस कर्म से ही वह तदनु रूप फल पाता है। श्रीराम! मन, चित, वासना, कर्म, दैव और निश्चय ये सब कठिनता से समझ में आने वाले मन की (मनोरूपता को प्राप्त हुए पुरुष की) संज्ञाएं हैं, ऐसा सत्पुरुषों का कथन है।

श्रीराम! इस प्रकार पूर्वोक्त संज्ञाएँ धारण करने वाला पुरुष अपनी सुदृढ़ वासना के द्वारा प्रतिदिन जैसा प्रयत्न करता है। उसके अनुसार ही उसे पर्याप्त फल मिलता है। रघुनन्दन! इस प्रकार पौरुष से मनुष्य इस जगत में सब कुछ प्राप्त कर लेता है। दैव से नहीं। तुम अपने प्रयत्न से प्राप्त परम पुरुषार्थ द्वारा ही सदा बने रहने वाले परम कल्याण को प्राप्त होओगे, अन्यथा नहीं। श्रुति में जो चैतन्य मात्र स्वरूप प्राज्ञ पुरुष बताया गया है। वही तुम हो, जड़ शरीर नहीं हो। तुम स्वयं प्रकाश स्वरूप चेतन हो। अन्य चेतन से प्रकाशित होने की योग्यता तुम में कहाँ है? यदि तुम्हें दूसरा कोई चेतन प्रकाशित करता है, ऐसा मान लिया जाए तो फिर उसे दूसरा कौन प्रकाशित करता है, यह प्रश्न खड़ा हो जाएगा। यदि उसका भी कोई चेतन प्रकाशक है तो फिर उसको कौन प्रकाशित करेगा? इस प्रकार अनवस्था–दोष प्राप्त होता है। जो वस्तु का साधक नहीं है। इसलिए मनुष्य के चाहिए की वह शुभ और अशुभ मार्गों से बहती हुई वासनारूपिणी नदी को पुरुषोचित प्रयत्न के द्वारा अशुभ मार्ग से हटाकर शुभ मार्ग में ही लगाये।

मनुष्य का चित्त शिशु के समान चंचल होता है, उसे अशुभ मार्ग (पाप) से हटा दिया जाय तो शुभ मार्ग (पुण्य) में जाता है और यदि शुभ मार्ग से हटाया जाए तो अशुभ मार्ग में चला जाता है। इसलिए उसे बल पूर्वक अशुभ के मार्ग से हटाकर शुभ के मार्ग मे लगाना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य के लिए उचित है कि वह पूर्वोक्त क्रम से चित्त रूपी बालक को शीघ्र ही समतारूप सान्त्वना देकर पुरुषोचित प्रयत्न के द्वारा धीरे–धीरे आत्मस्वरूप में लगाये, हठपूर्वक एकाएक उसका निरोध न करे। यही उसका लालन–पालन है। लोक में मनुष्य जिस–जिस विषय का अभ्यास करता है, निस्सदेह उसी में तन्मय हो जाता है। यह बात बालकों से लेकर बड़े–बड़े विद्वानों तक में देखी गयी है। अतः श्रीराम! तुम परम कल्याण की प्राप्ति के लिए उत्तम पुरुषार्थ का आश्रय ले पांचों इन्द्रियों को जीतकर यहाँ शुभ वासना युक्त हो जाओ। तुम श्रेष्ठतम पुरुषों द्वारा सेवित और अत्यन्त सुन्दर शुभ वासना का अनुसरण करके मनोरम भावयुक्त बुद्धि से परम पुरुषार्थ द्वारा सदा शोक रहित पद को प्राप्त करो। तत्पश्चात् उस शुभ वासना का भी परित्याग करके परब्रह्म परमात्मा में भली–भाँति स्थित हो जाओ।

● ● ●

गीतामृत पदावली

लेखक – राम प्रकाश गुप्ता, हल्द्वानी
प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

अध्याय 14

भगवानुवाच

पार्थ! तुझे बतलाता हूँ फिर ज्ञानों में सर्वोत्तम ज्ञान।
परम सिद्धि मुनियों ने पाई इसी लोक में जिसको जान।।1।।

इसी ज्ञान का आश्रय करके, पाकर मेरा पद निश्चय।
सृष्टि–काल में जन्म न होता, व्यथित न करता तथा प्रलय।।2।।

प्रकृति योनि है मेरी उसमें मैं करता हूँ गर्भाधान।
जन्म उसी से पाता है तब सर्वजीवमय जगत् महान्।।3।।

सभी योनियों में हैं पाते पार्थ! जन्म जो जीव अनेक।
प्रकृति योनि है योनि सभी की और पिता हूँ मैं ही एक ।।4।।

तम, रज, सत्व–त्रिगुण ये, अर्जुन! जन्म प्रकृति से हैं पाते।
अमर जीव को इस शरीर में ये ही, अर्जुन! बँधवाते।।5।।

निर्मल है इस कारण अर्जुन, सत्व प्रकाशक, है वह आप।
इसके द्वारा बँधते हैं सब ज्ञान तथा सुख से, निष्पाप।।6।।

रागात्मक रज से आसक्तिसी तृष्णा होती उत्पन्न।
इसके द्वारा जीवात्मा का कर्मों से होता बन्धन।।7।।

तम अज्ञान–जनित है, अर्जुन, सबको मोहित यह करता।
निद्रा, आलस औ' प्रमाद से, प्राणी इनसे है बँधता।।8।।

सत्व लगाता सुख में औ' रज कर्मों में प्रेरित करता।
तम प्रमाद की ओर झुकाता, ज्ञान सभी का वह हरता।। 9।।

रज-तमको ढक 'सत्व' और तम-सत्व उभय ढक 'रज' आता।
सत्व और रज को ढक करके प्रकट पार्थ! 'तम' हो जाता।। 10।।

तन के सब द्वारों में अर्जुन! जब होता उत्पन्न प्रकाश।
निर्मल ज्ञान उदय जब होता, तभी 'सत्व' का कहो विकास।। 11।।

विषय भोग की अभिलाषायें लोभ फलेच्छा से सम्पन्न।
घोर अशान्ति लालसा मन की, 'रज' से होती है उत्पन्न।। 12।।

तथा तमोगुण के बढ़ने से अंधकार से ढकता मन।
कर्तव्यों के प्रति उदासीनता मोह आदि होते उत्पन्न।। 13।।

सत्व-वृत्ति के वृद्धि-काल में देह त्यागकर जो जाते।
शुभ कर्मों से मिलने वाला स्वर्ग-लोक हैं वे पाते।। 14।।

मरण रजोगुण में होने से कर्मासक्त जनम पाते।
और तमोगुण में मरकर नर नीच योनि में हैं जाते।। 15।।

सात्विक कर्मों का फल अर्जुन! होता उत्तम, निर्मल ज्ञान।
दु:ख रजोगुण का फल होता, तम का फल होता अज्ञान।। 16।।

लोभ रजोगुण से होता है, और सत्व से होता ज्ञान।
सदा तमोगुण से होते हैं मोह, प्रमाद तथा अज्ञान।। 17।।

सात्विक नर ऊपर हैं जाते, बीच राजसी हैं रहते।
नीच तमोगुणवाले नर तो सदा अधोगति में गिरते।। 18।।

सब कर्मों के कर्ता गुण ही, है – द्रष्टा जब यह लख पाता।
परे गुणों से तत्व देखता, तब वह मुझमें मिल जाता।। 19।।

देहात्मक तीन गुणों को पुरुष पार जब कर जाता।
जन्म-मरण के दुख से छुटकर मुक्ति, अमर पद है पाता।। 20।।

अर्जुन उवाच

सभी गुणों से मुक्त पुरुष का क्या लक्षण है, क्या आधार।
गुणातीत नर कैसे होते, मुझे बता दो जगदाधार।। 21।।

श्रीभगवानुवाच

पार्थ! गुणों के फलस्वरूप हैं मोह, प्रवृत्ति, प्रकाश-सभी।
इच्छा उसे न पाने की औ' गत होने पर क्षोभ कभी।। 22।।

उदासीन वह, नहीं गुणों से, विचलित होता किसी प्रकार।
कहता, गुण ही करते सब-कुछ, सुस्थिर रहता, विगत-विकार।। 23।।

सुखदु:ख में जो सम है, जिसको मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण समान।
सदा धीर वह, सम हैं उसको, प्रिय-अप्रिय, निंदा गुणगान।। 24।।

सम हैं मित्र तथा रिपु जिसको, हैं सम जिसे मान-अपमान।
कर्त्तापन का भाव न जिसमें, उसको गुणातीत तू जान।। 25।।

एकनिष्ठ हो, भक्ति-भाव से, मुझको जो भजते रहते।
गुणातीत हो, ब्रह्म-प्राप्ति की, पार्थ! योग्यता वे रखते।। 26।।

अव्यय, अमर ब्रह्म का, अर्जुन! मुझको ही आश्रय तू जान।
शाश्वत धर्म एकान्तिक सुख का मैं ही केवल एक निधान।। 27।।

('गीतामृत-पद्यावली' का गुणत्रय-विभाग-योग नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण)

●●●

(क्रमश:)

स्वास्थ्य

योग-आसन

वातायनासन

विधि

इस आसन के करने की विधि वृक्षासन से बिल्कुल मिलती जुलती ही है। केवल इतना अन्तर है कि अपना दाहिना पैर जो मोड़ कर बायें पैर की जंघा पर जमा कर रखा हुआ है, उसके घुटने को नीचे को बढ़ा कर बायें पैर के ग्रन्थी स्थान (गुल्फ) टकनों पर जमा कर हाथ जोड़ कर खड़े रहें। बायाँ पैर घुटने में से थोड़ा झुक जायेगा। इस आसन को वातायन आसन कहते हैं।

वातायनासन

समय - साधारण वृक्षासन की ही तरह 1 मिनट से आरम्भ करके 2 या 3 मिनट तक पैरों को बदल-बदल कर, कर लेना चाहिए।

लाभ - आरोग्यता बढ़ती है। वायु निस्तरण होकर कोष्ठबद्धता में लाभदायक है। वीरासन भाव पुष्ट होते हैं।

●●●

शोक संवेदना

गुरुभाई-बहिनों को यह सूचना देते हुए दुःख हो रहा है कि प्रयाग वासी गुरुभाई श्री रविनारायण मालवीय जी का 16 जुलाई को सायं 5:45 बजे नवीन आश्रम चिन्मय मिशन प्रयाग में देहावसान हो गया है। वे 80-82 वर्ष के हो चुके थे। प्रयाग में प्रतिवर्ष लगने वाले माघ मेला तथा कुम्भ मेला में उनका सहयोग भुलाया नहीं जा सकता। वे इलाहाबाद के प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष भी थे। उनके निधन से हम सभी को अपूरणीय क्षति हुई है। हम उनकी आत्मा की शान्ति के लिए श्री प्रभुजी से प्रार्थना करते हैं। वे उन्हें अपने अभयप्रद चरणों में स्थान दें।

सम्पादक सिद्धयोग

आत्म उद्धार की आकांक्षा

– श्रीमति सुमन कुराना (हरि.)

प्राय: लोगों द्वारा यही सुनने को मिलता है कि गीता पढ़ना, संतो की जीवनियाँ पढ़ना, लम्बे उपवास करना यह काम साधु सन्यासियों का होता है, गृहस्थ का नहीं। यह लोगों की भ्रामक कल्पना नहीं तो और क्या है? भगवत्गीता सारे संसार के लिए है। परमार्थ विषयक सभी साधन प्रत्येक व्यवहारिक मनुष्य के लिए है। परमार्थ सिखाता है कि हम अपने व्यवहार को शुद्ध रखकर शान्ति प्राप्त कैसे करें। यही सिखाने के लिए गीता है। गीता चाहती है कि मनुष्य अपने व्यवहार को शुद्ध करे और सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करें।

अपने अन्दर हिम्मत रखो कि मैं अपने आपको अवश्य ऊपर उठाऊँगा। यह मत सोचो कि मैं एक कमजोर सांसारिक प्राणी हूँ। मैं कुछ नहीं कर सकता। अपनी सोच सदा सकारात्मक व विचार ऊँचे रखो। मनुष्य जैसा–जैसा सोचता है, वैसा–वैसा बनता चला जाता है।

गीता हमें संदेश देती है कि "हे मेरे जीव! तुम देव बन सकते हो, यदि तुम यह दिव्य आकांक्षा अपने मन में रखो। अपने मन को सांसारिक बंधनों से मुक्त रखकर उसके पंखों को सुदृढ़ बनाओ।

गीता में साधना के अनेक प्रकार बताए गए है – कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, आत्मानात्म विवेक, गुण विकास आदि। छठे अध्याय में 'ध्यानयोग' साधना का प्रकार बताया गया है।

ध्यान योग

ध्यान योग के लिए तीन बातें मुख्य हैं –

1. चित्त की एकाग्रता।

2. जीवन की परिमितता।

3. सम–दृष्टि।

उपर्युक्त तीनों बातों से ध्यानयोग बनता है इनके साथ–साथ जरूरी है अभ्यास और वैराग्य। अब हम इन पाँचों के बारे में चर्चा करेंगे।

1) चित्त की एकाग्रता –

चित्त की एकाग्रता का अर्थ है – चित्त की चंचलता पर अंकुश लगाना। हर कार्य की सफलता हमारे मन की एकाग्रता पर निर्भर करती है। लेकिन यह एकाग्रता सधे कैसे? इसके लिए जरूरी है मन को शांत करना। मन को शांत करना बड़े महत्व की बात है। विचारों के चक्र से निकले बिना मन की एकाग्रता होगी कैसे? यदि हम बाहर के विचारों को रोक देते हैं, तो मन के अन्दर

विचारों का वेग उमड़ने लगता है। मन को एकाग्र करने वाला मनुष्य कितना ऊँचा उठ सकता है, इसका नमूना दिखाने वाले लोग पहले भी थे और आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं। इस नर देह में कितनी शक्ति है, इसको दिखाने वाले संत पहले भी थे और आज भी हैं। मन की स्थिति बदले बिना यह एकाग्र नहीं हो सकता। मन की स्थिति शुद्ध होनी चाहिए। हमारा हर व्यवहार शुद्ध होना चाहिए। हमें अपने मन से सभी सांसारिक वस्तुओं के चिंतन को हटाना होगा। जिस नर देह को पाकर मनुष्य इतने वीर हो गए, वही नर देह मुझे भी तो मिली है, फिर मेरी ऐसी दशा क्यों? जरूर हमारे अन्दर कोई न कोई कमी रह जाती है। हमें अपनी सभी कमियों जैसे ईर्ष्या, क्रोध, मद, लोभ मोह आदि को दूर करना होगा। खूब भजन व ध्यान करना होगा। संसार से विरक्ति और प्रभु प्रेम में आसक्ति को बढ़ाना होगा। कोई भी कार्य कठिन नहीं होता, कठिन होता है कार्य के प्रति रुचि पैदा करना। यदि हम कार्य के प्रति रुचि, लगन एक धुन बना लें तो असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है। यदि हम अपने मन में यह बात बिठा लें कि ध्यान योग के लिए मन को एकाग्र करना ही पड़ेगा तो हम इसे एकाग्र करना भी सीख जायेंगे।

2) जीवन की परिमितता

जीवन की परिमितता का अर्थ है – जीवन की सभी क्रियाओं का नपा–तुला हुआ होना। दवाईयाँ जैसे नाप तोल कर ली जाती हैं, वैसे ही हमारी आहार निद्रा भी नपी तुली हुई होनी चाहिए। इसके लिए हमें अपनी हर ज्ञानेन्द्रि पर पहरा लगाना होगा। हमें हमेशा अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर भी ध्यान देना होगा कि मैं ज्यादा तो नहीं खाता, अधिक तो नहीं सोता, जरूरत से ज्यादा तो नहीं बोलता। अधिक तो नहीं देखता, ज्यादा तो नहीं सुनता। वैसे यह मन भी बहुत जबरदस्त है कि जरा सी आहट आई कि गया उधर इसके लिए जीवन में नियमन व परिमितता लाओ। खराब चीजें न देखो, खराब पुस्तकें न पढ़ो। किसी की निन्दा स्तुति मत करो सदोष वस्तुएँ तो दूर, निर्दोष वस्तुओं का भी अधिक सेवन न करो फलाहार शुद्ध है परन्तु वह भी अनाप–शनाप नहीं होना चाहिए। शराब पकौड़ी, रसगुल्ले तो होने ही नहीं चाहिए। हमारी इन्द्रियों पर हमारी धाक रहनी चाहिए कि यदि हम गलत करेंगे तो हमारे प्रभुजी नाराज हो जाएँगे और हमें सजा मिलेगी। नियमित और संयमित आचरण को ही जीवन की परिमितता कहा जाता है।

3) सम दृष्टि

समदृष्टि का अर्थ है – शुभ दृष्टि। जब तक हमारी दृष्टि शुभ नहीं होगी तब तक हमारा चित्त एकाग्र नहीं होगा। पूरी सृष्टि मंगलमय नजर आनी चाहिए। जैसा हम खुद पर विश्वास करते हैं वैसा ही सारी सृष्टि पर विश्वास होना चाहिए कि हमारा कोई अहित नहीं कर सकता। यह पूरा विश्व मंगलमय है। अंग्रेज कवि ब्राउनिंग ने भी ऐसा ही कहा था कि "ईश्वर आकाश में विराजमान है और सारा विश्व ठीक चल रहा है।"

विश्व में कुछ भी बिगाड़ नहीं है। अगर बिगाड़ कहीं है, तो वह है मेरी दृष्टि में। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। अपने चित्त को शाँत करो और उसे मंगलदृष्टि से देखो। अपने मन को निर्मल और निर्लेप बनाओ। आज हमारा जीवन कृत्रिम हो गया है। हमारी बालवृत्ति नष्ट हो चुकी है। जीवन की

वास्तविकता दिखावे में बदल गयी है। रजोगुण व तमोगुण हमारे ऊपर हावी हो चुके हैं। भजन, ध्यान, मंत्र, प्रभु चिंतन द्वारा अपने सतोगुण को जाग्रत करिए और अपनी वृत्ति को इतनी सौम्य बनाइये कि स्वप्न में भी हमसे कोई अपराध न हो। जैसे–जैसे हमारी दृष्टि सम होती चली जाएगी, हमारे मन की एकाग्रता भी सधती चली जाएगी।

अभ्यास और वैराग्य

अभ्यास और वैराग्य इनमें से एक विधायक व दूसरा विध्वंसक। मन में सदविचारों का बार–बार चिंतन करना अभ्यास कहलाता है। अभ्यास एक विधायक क्रिया है। वैराग्य एक विध्वंसक क्रिया है। मन से अनैतिक विचारों को निकाल देना ही वैराग्य है। परन्तु यह वैराग्य आए कैसे? हम कहते है कि आम मीठा है, परन्तु क्या यह मिठास निरे आम में है। नहीं आम में नहीं, हम अपनी आत्मा की मिठास आम में डालते हैं और फिर वह मीठा लगता है। बार–बार इस प्रकार की भावना करते रहने से मन में वैराग्य आने लगता है। अपनी अंतरात्मा की मिठास चखना सीख लो। अपने मन को बाह्य वस्तुओं के चिंतन से हटाकर प्रभु के चिंतन में लगाओगे तो संसार के प्रति तुम्हारे मन में जो आसक्ति है, वह स्वयं नष्ट हो जाएगी।

ध्यानयोग का वर्णन करते हुए भगवान स्वयं कहते हैं कि मनुष्य को दृढ़ संकल्प करना होगा कि 'मुझे स्वयं अपना उद्धार करना है। मुझे इस नर देह में ज्यों का त्यों पड़ा नहीं रहना। परमेश्वर के पास जाने का हिम्मत के साथ प्रयत्न करना है।'

यह सुनते–सुनते अर्जुन के मन में शंका उठी कि अब तो हमारी उम्र बीत गई। कुछ दिनों में हम मर जाएंगे। यह साधना हमारे किस काम आएगी? भगवान ने कहा 'मृत्यु का अर्थ है लंबी नींद।' नींद से कोई डरता है, बल्कि नींद न आए तो हमें चिंता हो जाती है। जैसे नींद जरूरी है, वैसे ही मौत भी जरूरी है। जैसे नींद से उठकर हम अपना कार्य पुनः आरम्भ कर देते हैं। वैसे ही मरने के बाद भी हमारी साधना काम आएगी। ज्ञानदेव के चरित्र को पढ़ने से पता चलता है कि सारे शास्त्र उनके मुख से स्वयं निकलते थे। इस प्रकार के चरित्र पढ़ने से पता चलता है कि पूर्व जन्म का अभ्यास हमें स्वयं खींच लेता है। किसी–किसी का चित्त संसार की तरफ जाता ही नहीं। वह जानता ही नहीं कि मोह कैसा होता है? क्योंकि वह पूर्व जन्म में इसकी साधना कर चुका है।

जो मनुष्य कल्याण के मार्ग पर चलता है, उसका जरा–सा भी श्रम व्यर्थ नहीं जाता। अंत में बताया गया है कि जो अपूर्ण है वह पूर्ण होकर रहेगा। भगवान के इस उपदेश को ग्रहण करो और अपने जीवन को सार्थक बनाओ।

● ● ●

गुरु देव तुम्हारी जय होवे

– जगदीश राए बंसल 'अधम'

गुरुदेव तुम्हें प्रणाम- तुम्हारी जय होवे।
गुण गावें वेद पुराण – तुम्हारी जय होवे।।

तेरी मन्द-मन्द मुस्कान –मोहनी लगती है
बस जाऊँ सवाई धाम – मेरा मन हरती है
मस्ताना है अरमान – कि दिल दिवाना हो जावे।

गुण गावे... (1)

गुरुवर भर दो मेरी झोली- तेरे दर पर आया हूँ
आप लुटाते हो बड़ा प्यार – यह सुन कर आया हूँ
यहाँ भरे हैं योग भण्डार – कि किस्मत खुल जावे।

गुण गावे ... (2)

मैं लेता रहूँ तेरा नाम – सदा रटता ही रहूँ
बलिहारी जाऊँ आपकी – सेवा करता ही रहूँ
कट जाएँ मेरे फन्द – जे आशिश मिल जावे।

गुण गावे ... (3)

मेरी व्यथा हर लो दाता – मैं आया तेरे द्वार
झूठी है यह दुनियाँ – और झूठा है संसार
'अधम' पर रहमत की – दृष्टि पड़ जावे।

गुण गावे ... (4)

प्रभू रामलाल की जय होवे
गुरु चन्द्रमोहन की जय होवे।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह अधोगति के मार्ग

– डॉ. जे.पी. शर्मा, गुरु आशीष सदन, पाँटा साहिब (हिमाचल प्रदेश)

मानव शरीर दश इन्द्रियों से मिलकर बना है। जीवन की सारी कार्य प्रणाली इन्हीं से चलती है। इन्द्रियाँ कार्य को करती हैं परन्तु स्वयं करने में स्वतंत्र नहीं होती हैं। जैसे समस्त प्रजा राजा के आधीन होती है, उसी तरह इन्द्रियाँ 'मन' के आधीन होती है। मन ही शरीर पर शासन करता है। इन्द्रियाँ मन की आज्ञा पाकर कार्य किया करती हैं, इसीलिए मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय कहकर भी पुकारा जाता है। इन्द्रिय जनित काम, क्रोध, मद, लोभ तथा मोह सब विष के समान होते हैं। इनका सम्बन्ध मन से रहा करता है। इन विकारों के रहते मनुष्य आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकता। ये विषतुल्य विकार मनुष्य को ईश्वर की तरफ जाने से रोकते है। मन में प्रवेश करके अपना निवास बना लेते हैं तथा शरीर को दूषित करते रहते है। शरीर के भीतरी अंग गन्दे हो जाते हैं जिसके कारण शरीर में तरह–तरह के रोग लग जाते हैं। अगर इन विकारों को मन से हटा दिया जाय तो मनुष्य पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। कहावत भी है – 'सुन्दर मन से स्वस्थ शरीर बनता है।' अंग्रेजी में इसे 'साउन्ड माइन्ड इन साउन्ड बॉडी' कहा जाता है। काम विकार आकर्षण का फल होते है। धातुओं में धनायन तथा ऋणायन, विद्युत प्रवाह में धनात्मक तथा ऋणात्मक में आकर्षण होता है, उसी तरह लोहे तथा चुम्बक में, नर तथा मादा में आपसी आकर्षण होता है इसी कारण सृष्टि चल रही है। अगर प्रकृति में ऐसा आकर्षण न होता, तब संसार की उत्पत्ति शायद न हो पाती। ब्रह्माण्ड निर्माण के बाद लाखों वर्षों तक सृष्टि बढ़ नहीं पायी थी, तब श्री ब्रह्माजी ने मैथुनी सृष्टि की इच्छा से अपने शरीर में मनु तथा शतरूपा पैदा किये जिनके समागम से सृष्टि आगे बढ़ी। अतः नर–मादा में आकर्षण का होना अति आवश्यक है। आकर्षण से काम पैदा होता है। पशु, पक्षी, सर्प, भेड़िये, हंस, तोता यहाँ तक कि वनस्पतियों में भी आकर्षण पाया जाता है। आकर्षण सृष्टि का आधार है। इसी कारण सृष्टि को द्वन्दमयी कहा जाता है। सारा ब्रह्माण्ड आकर्षण रूपी रस्सी से बँधा है। छोटे, बड़े, परिवार, गाँव, शहर, देश सभी आकर्षण रूपी डोर से आपस में बँधे हुए हैं। अतः आकर्षण, काम का सहज मार्ग होता है। जैसे खाना खाने से भूख मिटती है उसी तरह काम से इन्द्रियों की तृप्ति, सन्तुष्टि होती है तथा भूख दूर होती है। जब काम कई रूपों में सताता है तब कामनाओं का प्रादुर्भाव होता है। कामनायें सारी कभी पूरी नहीं हुआ करती, कुछ पूरी हो जाती है तथा शेष अपूर्ण ही रह जाती है। काम+ना+आयें का मतलब कामनायें होता है। कामनायें कष्टदायी होती हैं। कामनाओं की उत्पत्ति आसक्ति से होती है। कामनाओं का शरीर पर विषैला प्रभाव पड़ता है। आसक्ति से मनुष्य नीच तथा कमजोर बन जाया करता है। आसक्त मानव कुछ भी कर सकता है। मित्र, पुत्र

तथा स्त्री में जो मनुष्य आसक्त रहते हैं, वे ऐसे हैं जैसे तालाब की कीच में वन का बूढ़ा हाथी फँसकर उसी में पड़ा रहता है।

एक महात्मा पहाड़ियों पर घूमने निकले। रास्ते में फलों का बगीचा था। बड़े सुन्दर सेब के पेड़ों पर फल लगे थे। सेब देख कर फल खाने की इच्छा से एक सेब तोड़ लिया, जब उसे खाने लगे तब सेब खट्टा निकला तथा फेंक दिया तथा रास्ते में आगे बढ़ते गये। कुछ ही दूरी जाने पर महात्मा ने एक अघोरी बाबा को रास्ते में पड़ा हुआ देखा। बाबा के शरीर पर काफी संख्या में मक्खियाँ लदी थीं जो उसे काट रहीं थी, किन्तु बाबा निश्चल भाव से पड़ा था। महात्मा ने उसे नमस्कार किया तब अघोरी बाबा बोला – "आ गये श्रीधर महात्मा जी।"

एक अपरिचित से अपना नाम सुनकर महात्मा जी को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा आप मुझे कैसे जानते हैं?

अघोरी बाबा – 'एक भगवत्प्राप्त व्यक्ति से कुछ छिपा नहीं रहता।

महात्मा – आपको भगवत्प्राप्ति हुई है तो भगवान से क्यों नहीं प्रार्थना करते कि इन मक्खियों को आप से दूर कर दें?

अघोरी बाबा – श्रीधर महात्मा जी आपको भी भगवत्प्राप्ति हुई है। तुम क्यों नहीं प्रार्थना करते कि तुम्हारे मन में सेब खाने की कामना न हो? मक्खियाँ तो शरीर को ही कष्ट दे रही हैं, किन्तु कामनायें तो हृदय को पीड़ित करती है।

मनुष्य की कामनायें कभी पूरी नहीं होतीं। कामनाओं का मनुष्य गुलाम बना रहता है। यह हर पल मनुष्य को पीड़ा पहुँचाती रहती हैं। लोभी मनुष्य की कामनायें ठीक उसी तरह की हुआ करती हैं, जैसे कच्ची छत में पानी भरा रहता है, उसी तरह अज्ञानी के मन में कामनाओं का भंडार भरा रहता है। एक पूरी होती है तब दूसरी कामना जाग जाती है। इसी प्रकार यह सिलसिला लगातार चलता रहता है। अतः कामनाओं के पीछे दौड़ना महान मूर्खता है। जब तक कामनायें बनी रहती हैं तब तक मनुष्य सुखी नहीं रहता। जीवन भर कामनाओं की पूर्ति में ही फँसा रहता है। जैसे समुद्र पानी से तृप्त नहीं होता, उसी तरह मनुष्य कामनाओं से सन्तुष्ट नहीं होता। यह कथन सत्य है। – The thirst of desire is never filled nor fully satisfied. इच्छा की भूख कभी नहीं मिटती, न पूर्णरूप से सन्तुष्ट होती है। इच्छाओं के भाव हमारे चेहरे पर उभर आते हैं। इच्छाओं के रहते मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति नहीं हो पाती। ठीक ही कहा जाता है – "कामी, क्रोधी, लालची इनसे भक्ति न होय, भक्ति करे कोई शूरमा जाति वर्ण कुल खोय।"

विषय सुख की कामना मनुष्य को अन्धा बना देती है। राजा भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है – 'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।' विषयों को हमने नहीं भोगा, विषयों ने हमें ही भोग लिया। इसीलिए श्री तुलसीदास ने कहा है –

"सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरितजि होंहि विषय अनुरागी।।"

आगे कहते हैं –

भोगरोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।।

प्रायः जब मनुष्य अपने उद्देश्य पूर्ति में असफल होने लगता है अथवा असफल हो जाता है, तब उसे निराशा होने लगती है, उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, बात–बात पर उतावला हो जाया करता है तथा छोटी–छोटी बात पर क्रोध करने लगता है। क्रोध एक भयंकर बीमारी है। क्रोध मनुष्य के मन तथा शरीर को दुर्बल बना देता है। क्रोध से शरीर में नाना प्रकार की आदि–व्याधि हो जाती है। रक्त गर्म हो जाता है जिससे रक्तचाप बढ़ जाता है। वैज्ञानिकों ने क्रोधी मनुष्य का खून इन्जेक्सन द्वारा खरगोश के शरीर में पहुचाया तथा पाया कि बाईस मिनटों के बाद खरगोश आदमियों को काटने लगा, पैंतीसवें मिनट पर उसने अपने आप को ही काटना शुरू कर दिया तथा एक घण्टे के पश्चात् तड़प–तड़प कर मर गया। क्रोध में मनुष्य आपे से बाहर हो जाता है, चेहरे का रंग लाल तथा शरीर गर्म हो जाता है। क्रोध से मानसिक सन्तुलन बिगड़ने लगता है, सांस तेज हो जाती है, मुँह सूखने लगता है तथ आँखों के सामने अंधेरा सा हो जाता है। ऐसे समय में शीतल पानी देने से क्रोध शान्त हो जाया करता है। इसीलिए कहा जाता है – 'क्रोध पापकर मूल'। क्रोध में आने से भूल होने लगती है। मनुष्य भूल में अनेकों प्रकार के पाप कर बैठता है।

मद मनुष्य को मस्त बना देता है। जैसे नशा करने से शरीर विवेक शून्य हो जाता है, उसी तरह से मद में चूर मनुष्य मस्त तथा विवेकहीन हो जाता है। अनायास धन प्राप्ति, आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति मनुष्य को मस्त बना देती है। अपने स्वार्थ में, दूसरों के दुःख दर्द को, मद में रहने वाला व्यक्ति ध्यान नही देता। मस्त हाथी जैसे रास्ते में छोटे–छोटे पेड़–पौधों को जड़ समेत उखाड़ फेंकता है। उसी प्रकार मद में रहने वाला मनुष्य दूसरों को दुःख देने लगता है। मदी मनुष्यों को समाज में कोई स्थान नहीं मिलता सब उससे दूर रहने की चेष्टा करते हैं। मद मानव को मनुष्यता से गिरा देता है।

कृपणता तथा कंजूसी मनुष्य को लोभी बना देती है। निरंतर धन सम्पत्ति जमा करने की आदत तथा व्यय में कंजूसी करने को लोभ कहा जाता है। धन का सदुपयोग करना श्रेयस्कर होता है। धन होते हुए भी अनावश्यक कंजूसी करना मूर्खता की निशानी होती है। पानी, पीने के लिए होता है। पानी पीने में कंजूसी करके पानी जमा करने पर पानी खराब हो जाता है। जमा किया गया पानी कुछ दिनों में सड़ने लगता है, उसमें दुर्गन्ध आने लगती है। शरीर तथा मन का स्वाभाविक धर्म है कि वह जिसे ग्रहण करता है, उसे त्यागता भी है। मन में विचार आते हैं तब मन से विचार जाते भी हैं। मन में विभिन्न प्रकार के विचार हर पल बनते तथा बिगड़ते रहते हैं। विचारों का आवागमन लगा ही रहता है। इस तरह मन सुन्दर स्वस्थ बना रहता है, जैसे बहते

पानी से नदी साफ रहा करती है। लोभी मानव सदैव धन का ही चिन्तन किया करता है। वह निन्यानबे के फेर में ही अपना जीवन बर्बाद कर देता है। धन माया तथा लक्ष्मी का रूप होता है। लक्ष्मी चंचल होती है। कभी स्थिर नहीं रहती। लक्ष्मी का वाहन उल्लू है जिसे रात के अँधेरे में साफ दिखाई देता है। अत: ज्यादा लक्ष्मी का संग्रह, मनुष्य को उल्लू बना देता है। धनी मनुष्य वास्तव में उल्लू सदृश व्यवहार करने लगते हैं। लोभी मनुष्य माया के चक्कर में पड़े रहते हैं, उन्हें ईश्वर आराधना का ख्याल ही नहीं आता है। उनका मन धन के संग्रह में ही लगा रहता है। कबीर ने ठीक ही कहा है–

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।

तन का मन का डाल दे, मन का मन का फेर।।

किसी ने ठीक ही कहा है – ''ममता तू न गई मेरे मन से।'' मनुष्य ममता मोह के जाल में हर समय फँसा हुआ है। मोह एक आकर्षण है, लगाव है जिसे अपना समझते हैं। प्राय: मनुष्य पुत्र, पुत्री, स्त्री, माँ–बाप, सगे सम्बन्धियों आदि से अतिशय प्यार करता है। अन्तर्मन से उनसे जुड़ा रहना चाहता है। मोह जगत में व्याप्त है। मनुष्य क्या पशु, पक्षी, रेंगने, दौड़ने वाले जानवरों में सभी में मोह समाया रहता है। चिड़ियाँ अपने बच्चों के मुँह में चोंच से आहार डालती देखी जाती हैं। क्या उनके बच्चे बड़े होकर अपने माँ–बाप की सेवा करते हैं? उत्तर है, नहीं। पशु अपने नवजात बच्चे को चाट–चाटकर प्यार दर्शाते हैं। यह सब उनके मोह के ही कारण होता है। मोह में फँसा मनुष्य ईश्वर आराधना में नहीं लग पाता। ईश्वर प्राप्ति के लिए मोह का त्याग करना ही पड़ेगा।

सन्तोष से बड़ा कोई तप नहीं है, परन्तु तृष्णा सन्तोष की दुश्मन होती है। तृष्णा के समान कोई व्याधि नहीं है। जहाँ तृष्णा रहती है, सन्तोष को दूर भगा देती है। मनुष्य तृष्णा के सहारे अपना जीवन गुजार देता है। वृद्धावस्था में शरीर नि:सहाय हो जाता है, बाल सफेद हो जाते हैं, आँखों से दिखाई नहीं देता, मुँह के दाँत निकल जाते हैं, कानों से सुना तक नहीं जाता, पैरों से चला नहीं जाता परंतु मनुष्य की तृष्णा जवान ही बनी रहती है। राजा भर्तृहरि ने कहा है –

गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते।।

अर्थात् शरीर शिथिल हो गया, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयीं, शरीर के रोम–रोम सफेद हो गये सारे अंग ढीले हो गये पर तृष्णा तरुणी ही बनी रही, वह मरी नहीं। इसीलिए कहा गया है – 'नास्ति तृष्णा समं दु:खम् तथा नास्ति त्यागसमं सुखम्।' इसीलिए – 'सर्वान् कामान परित्यज्य ब्रह्म भूयाय कल्पते' अर्थात् ब्रह्मभाव प्राप्त करने के लिए तृष्णाओं का त्याग करना श्रेयस्कर होता है।

इसी प्रकार काम की शान्ति कभी काम के उपभोग से नहीं हो सकती। ज्यों–ज्यों काम

का भोग किया जाता है, त्यों–त्यों काम की लालसा बढ़ती जाती है। काम भोग काल में आग में घी डालने के समान होता है। जैसे आग में घी डालने से आग भड़क उठती है, उसी तरह काम के उपभोग में काम वासना और बढ़ जाती है। जिसके भयंकर परिणाम शरीर को भोगने पड़ते हैं।

न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

गोस्वामी तुलसीदास ने काम भोग के बारे में कहा है –

''बुझे न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषयभोग बहु घीते।''

अर्थात् कामरूपी विषयभोगों की आग घी रूपी भोगों के उपयोग से बुझती नहीं है। काम से पीड़ित मनुष्य जड़–चेतन में भेद नहीं कर सकते। महाकवि कालिदास ने कहा है–

''कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेत नाचेतनेषु।''

जिस प्रकार जन्म से अन्धे मनुष्य को कुछ दिखाई नहीं दिया करता, उसी प्रकार ''कामान्धो नैव पश्यति'' कामान्ध को भी कुछ दिखाई नहीं देता। भोगकाल में काम से सुख की अनुभूति होती है परन्तु उसका परिणाम दुःख देने वाला ही होता है।

जब किसी की कामनाओं की पूर्ति नहीं होती तथा कामपूर्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं से जो स्थिति बनती है, उसे ही क्रोध कहा जाता है। क्रोध से बुद्धि का नाश होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति।।

(गीता 2/63)

अर्थात् क्रोध से अविवेक उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मरण शक्ति भ्रमित होती है और स्मृति के भ्रमित होने से बुद्धि अथवा ज्ञान का नाश हो जाता है, बुद्धि नाश के होने से मनुष्य अपने श्रेयमार्ग से अधोगति को प्राप्त होता है।

क्रोध शरीर में धधकती ज्वाला है। मनुष्य जब इस क्रोध की ज्वाला को अपने वश में कर लेता है, वह इस ज्वाला को बुझा देता है। अतः हम क्रोध से सचेत रहें तथा क्रोधी से भी दूर रहें।

मूर्खता से ही क्रोध का जन्म होता है तथा इसका परिणाम पश्चाताप होता है। क्रोध मन के दीपक को बुझा देता है। क्रोध से धर्म की हानि होती है। क्रोध मनुष्य का डूंग अहंकार होता है। क्रोध शान्त करने का सीधा उपाय है, मौन साधना। क्रोध के समय शीतल जल पीने से शान्ति मिलती है। जिस स्थान पर क्रोध आये, उस स्थान को त्याग दीजिए। क्रोध के समय प्रभु स्मरण करने से क्रोध शान्त हो जाता है। अपनी नम्रता से क्रोध को दूर भगाइये। अगर क्रोध करना ही पड़े तो बाह्य रूप से केवल दूसरों को दिखाने के लिए क्रोध कीजिए, उसे अपने आन्तरिक मन

से कभी स्वीकार न करें। कबीर ने क्रोध शान्ति के लिए साधु संगत करने की सलाह दी है –

दसो दिसा से क्रोध की, उठी अपर बल आगि।

सीतल संगति साधु की, तहाँ उबरिये भागि।।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह सब रजोगुण के कारण पैदा होते हैं। ऐसा करके मनुष्य दूसरों पर अपना प्रभाव प्रदर्शित करने की कोशिश करता है। भगवान कृष्ण ने इन्हें 'रजोगुणसमुद्भवः' कहा है। दूसरी तरफ भगवान ने कहा है –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत।।

अर्थात् काम, क्रोध और लोभ – ये तीनों नरक के द्वार हैं। तीनों ही आत्मा को नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार मद तथा मोह मानव को अधोगति की तरफ ले जाते हैं। अतः इन पाँचों को सदा के लिए छोड़ देना चाहिए। तुलसीदास ने कहा है –

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।

मुनि विज्ञान धाम मन करहिं निमिष महु क्षोभ।।

अर्थात् काम, क्रोध तथा लोभ मानवता के बहुत बड़े शत्रु हैं, जो मन में हर पल क्षोभ उत्पन्न करते रहते हैं। ये तीनों प्रबल शत्रु उत्पात मचाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। अपनी शक्ति दिखाने का मार्ग सदैव हर क्षण ढूंढते ही रहते हैं। काम का बल नारी है, क्रोध का परुषवचन है तथा लोभ बल द्रव्य है। उसी प्रकार मद का बल समृद्धि तथा मोह का बल प्यार ममता है। वासनाओं रहित मन से ही इनसे प्राणी छुटकारा पा सकता है। वासनाओं की निवृत्ति भगवद् भक्ति से ही सम्भव है। भगवान की कृपा के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है।

श्री सद्गुरुदेव जी के पावन चरण कमलों में मेरी कोटि–कोटि साष्टांग नमन तथा गुरु भाईयों को सादर जय गुरुदेव।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

●●●

तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा का अधिकार है। प्रभु की संतान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी संतान की सेवा कर सकोगे तो तुम धन्य हो जाओगे। अपने को ही बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुम्हें अवसर मिला है, और दूसरों को नहीं मिला। यह सेवा तुम्हारे लिए पूजा तुल्य है।

– स्वामी विवेकानन्द

श्री सद्गुरुदेव जी की अंतरयामिता

— विनय मालवीय, इलाहाबाद

सिद्धयोग पत्रिका के पाठकगण महाप्रभु श्री रामलाल जी की अंतरयामितता से भली प्रकार परिचित होंगे ही। स्वयं श्री गुरुदेव जी अपने श्रीमुख से कितनी ही बार उस प्रसंग का उल्लेख कर चुके हैं जबकि वे स्वयं ऋषिकेश आश्रम छोड़कर जंगलों में निवास करने के विचार से बालों में वट–वृक्ष का दूध लगाकर जटा–जूटधारी वेष में आश्रम की दहलीज से एक कदम बाहर निकाला ही था कि सामने सड़क पर खड़े डाकिया ने प्रश्न कर दिया। इस आश्रम में चन्द्रमोहन कौन है? श्री गुरुदेव जी ने कहा! क्यों, क्या बात है? मैं ही चन्द्रमोहन हूँ। डाकिये ने उन्हें एक लिफाफा पकड़ा दिया और कहा कि यह पत्र आपके लिये है। श्री गुरुदेव जी बताते थे कि उस पत्र में लिखा था कि जो कदम तुमने आश्रम के बाहर निकाला है उसे वापस ले लो। मैं तो यहाँ गृहस्थों के बीच बैठा हूँ और तुमने जंगलों में रहने का निर्णय कर लिया। बस उसी समय से श्री गुरुदेव जी ने जटा–जूट कटवा दी और हम सबके कल्याणार्थ एक साधारण गृहस्थ के रूप में विचरते रहे।

यह तो था महाप्रभु श्री रामलाल जी की अंतरयामितता प्रसंग। जब से अपने गुरुदेव जी के प्रति यह अवधारणा दृढ़ हो गई है कि वे (परम पूज्य योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) वही (महाप्रभु श्री रामलाल जी ही) हैं तभी से उनसे सम्बन्धित अन्यान्य प्रसंगों में उनकी स्वयं की अंतरयामितता प्रत्यक्ष दिखलाई देने लग गई है। अभी हाल में ही जिस दिन मेरे मन में यह विचार आया कि लोगों से कहूँ कि इलाहाबाद की अपनी संस्था के अध्यक्ष श्री रवि नारायण जी मालवीय श्री गुरुदेव जी की चरण–शरण में कैसे आये यह स्वयं उन्हीं से पूछें, उसी समय उनकी तबियत कुछ अधिक खराब हो जाने की सूचना फोन पर मिली और उसी दिन उनका निधन हो गया। बस इसीलिए श्री गुरुदेव जी की अंतरयामितता के इस प्रसंग को लिपिबद्ध करने का मन बना लिया है।

तिथि–वार आदि तो हमारी स्मृति में अब नहीं रहे किन्तु घटना क्रम यथावत याद है। श्री रविनारायण जी हमारी श्रीमती जी की बुआ के देवर थे और हम सब लोग उन्हें 'चाचाजी' के नाम से सम्बोधित करते थे। आश्रमवासी गुरु–भाई बहन भी प्रायः उन्हें इसी नाम से जानते थे। चाचाजी केन्द्रीय सरकार के वित्त विभाग में लघु बचत योजना के डाइरेक्टर रहे हैं। घटना उनके रिटायर होने के दो–तीन वर्ष पूर्व की है। एक दिन अनायास ही हमें चण्डीगढ़ से चाचा जी का पत्र मिला। उसमें लिखा था कि पता नहीं क्यों दो–एक हफ्ते से उनके मन में रह–रह कर यह विचार आ रहा है कि 'नौकरी छोड़ो और गुरुजी के पास चलो'' वे इस बात से हैरान थे कि आज तक उन्होंने 'गुरु' क्या होते हैं? क्या करते है और 'गुरु' करना चाहिए भी या नहीं — इन विषयों पर

आज तक कभी कुछ सोचा–विचारा ही नहीं था। फिर ये विचार क्यों कर और कैसे मन में उठ रहे है? तभी उन्हे ख्याल आया कि बिरादरी में प्राय: लोग हमारी (विनय मालवीय) चर्चा करते हैं कि उन्होंने इस छोटी सी उम्र में ही, अभी से ही, गुरु दीक्षा ले रखी है। अत: उन्होंने हमें पत्र लिख कर उपरोक्त लिखी बातों से अवगत कराया और यह जानना चाहा कि तुम्हारे गुरुजी कौन हैं? कहाँ रहते है क्या करते हैं, कब और कैसे मिल सकते हैं? आदि–आदि। उत्तर में मैंने उन्हें बता दिया कि श्री गुरुदेवजी प्राय: स्थान–स्थान पर हफ्ते दस दिन का प्रोग्राम करते रहते हैं अत: उनसे कब और कहाँ पर भेंट हो सकेगी इसके लिए आप सिद्धगुफा सवाई आश्रम के पते पर पत्र लिखकर जानकारी प्राप्त कर लें। वहाँ से आपको श्री गुरुदेव जी के प्रोग्राम की पूरी जानकारी मिल जायेगी। सवाई से जब चाचाजी को पत्र मिलता है तो पता चलता है कि श्री गुरुदेव जी चण्डीगढ़ में ही कालिया जी के निवास स्थान पर ही कार्यक्रम करने आ रहे हैं। किस गाड़ी से कब चण्डीगढ़ पहुँच रहे हैं। पत्र में इसका भी उल्लेख था। चाचाजी के मन में विचार आया कि सीधे स्टेशन ही चलें। श्री गुरुदेव जी की अगवानी में लोग स्टेशन आयेंगे ही और वहीं सभी से भेंट हो जायेगी। अस्तु उन्होंने अपनी गाड़ी मँगवाई और सीधे स्टेशन पहुँच गये। लोगों की भीड़ और हाथों में फूल–माला देखकर समझने में देर नहीं लगी कि यही लोग श्री गुरुदेव जी के आने की प्रतीक्षा में खड़े है। तब से ट्रेन के आने का समय भी हो गया। चाचाजी भी सभी के साथ हो लिये। श्री गुरुदेव जी ट्रेन से उतरे और सभी लोग माल्यार्पण करने और चरण स्पर्श करने के उपरान्त प्रस्थान करने हेतु बाहर खड़ी गाड़ी (कार) की ओर चल पड़े। श्री गुरुदेव जी ने चाचाजी की ओर देखा और बोले। लल्ला! तुम आ गये। फिर कालिया जी से बोले– आज हम इनकी गाड़ी पर बैठकर चलेंगे। किसी का भी चाचाजी से कोई पूर्व परिचय तो था नहीं और न ही चाचाजी श्री गुरुदेव जी से पहले कभी मिले ही थे। कभी किसी अवसर पर कहीं अपने भूले–बिसरे बच्चे पर निगाह पड़ गई होगी और उसका कल्याण करने हेतु अपने पास बुला लिया। दो तीन माह पूर्व से ही सारी घटना का ताना–बाना बुन लिया। यह घटना श्री गुरुदेव जी के अंतरयामी होने का ही नहीं वरन् जगत नियंता होने का भी परिचायक है।

ऐसी ही एक और विलक्षण घटना की जानकारी भाई पुष्कर जी ने अन्तूराम जी यादव को अलूपुर में सुनाई थी जिसका विवरण उन्होंने अपने लेख –गुरुधामों की यात्रा में किया है। कैसे श्री गुरुदेव जी ने प्रयाग में जौहरी साहेब के निवास पर बैठे–बैठे पुष्कर जी के पिता जी को न केवल जीवन दान दिया वरन दूसरे ही दिन उन्ही के हाथों से अपने कुशल मंगल की जानकारी का पत्र लिखवा कर डाक द्वारा प्रयाग भी पहुँचवा दिया और इस प्रकार पुष्कर जी को अपने घर वापस लौटने से रोक लिया।

● ● ●

भजन - कव्वाली

– मोती राम गर्ग, अलूपुर

टेक – मुझे तो गुरुदेव प्यारे हैं, नजर कोई और न आवे।

जगत के नाते झूठे हैं, झूठा ये संसार सारा है,
नहीं किसी से सम्बन्ध प्रभुजी, तू ही हमें प्यारा है,
तेरे चरणों की रज मिल जावे, तो जन्म सफल हो जावे।
मुझे तो गुरुदेव ....

करता हूँ जब याद तुमको, हृदय भर-भर के आता है,
उठती है झाग समुन्द्र की, दिल मचल-मचल जाता है,
गुरु शिष्य का यह नाता, कभी मिट ना पावे।
मुझे तो गुरुदेव ....

सूरज और जमीं के बीच का, जो फासला खाली,
शक्ति तेरी है घूम रही, करता सब की रखवाली,
देता रहता है जीवन दान, नजर किसी को ना आवे।
मुझे तो गुरुदेव...

जगत के मोह में फंसकर, जीवन व्यर्थ गंवाया है,
नहीं कुछ पाया नहीं सीखा, नहीं कुछ समझ में आया है,
तेरी माया के चक्कर में प्रभुजी कहीं जीवन बीत ना जावे।
मुझे तो गुरुदेव ....

आध्यात्मिक संस्कार

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

परमात्मा की इस संसाररूपी लीला में एक विशेषता है कि –

"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"

अर्थात् अपने सर्वव्यापक अक्षरब्रह्म स्वरूप पर आरोपित संसार की रचना कर स्वयं उसमें प्रवेश कर लिया। शंका होती है कि सर्वव्यापी का कैसा प्रवेश। इस विषय में वेदवाणी का कथन है कि –

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः।
यस्मिन् प्राणः पंचधा सम्विवेषः।
प्राणैश्च चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्।
यस्मिन् विशुद्धे विभवति एषः आत्मा।।

(मुण्डक उप. 3/1/9)

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तम्।
यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढ़म्।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारम्।
ईशं तं ज्ञात्वा अमृताः भवन्ति।।

(श्वेता. उप. 3/7)

अर्थात् यह जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर तथा महान से भी महानतर सर्वव्यापी आत्मतत्व है, वह केवल निर्मल दर्पण की भांति विशुद्ध चित्त में ही अनुभव किया जा सकता है, अन्यथा चित्त में पंचधा प्राण का प्रवेश होने के कारण आत्मतेज से युक्त प्राण मनोवृत्तियों के रूप में संसार को ही प्रकाशित करता है। अविद्या के प्रभाव में चित्त सदैव चित्तवृत्तियों के मलावरण से युक्त होने के कारण आत्मतत्व के प्रकाश पर आरोपित संसार को ही दिखाता है जैसे कि थ्येटर के पर्दे पर प्रकाशकिरणों पर आरोपित फिल्म संसार ही पर्दे पर दिखाई देता है। प्रोजेक्टर से फिल्म निकाल देने पर ही पर्दे पर प्रकाश दिखाई देगा, इसी प्रकार चित्तवृत्तियों की फिल्म चित्त से निकालने पर विशुद्ध चित्त में आत्मज्ञान का अनुभव होता है। यह जो आत्मतत्व है, वह प्रकृति से भी उत्कृष्ट, संसार की रचना के निमित्त कार्यब्रह्म से उत्कृष्ट महानतम है, किन्तु अपनी ही मायाशक्ति के ऐश्वर्य से प्रत्येक शरीर में तथा प्रत्येक पदार्थ में उसी के स्वरूप के अनुकूल गुप्त होकर सर्वव्याप्त है तथा समस्त ब्रह्माण्ड का नियन्ता है। आत्मतत्व के इस रहस्य को जो जान

लेता है, वह मायिक बन्धनों से मुक्त होकर अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। यह कैसे सम्भव है, इसके लिए जिज्ञासा, शास्त्रों तथा महापुरुषों की वाणी में विश्वास तथा श्रद्धाभक्ति तथा निरन्तर अनुकूल साधना में प्रगतिशील होना आवश्यक है। मुख्य समस्या है कि मन पर नियन्त्रण कैसे हो, स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने माना कि –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

अर्थात हे अर्जुन! इस चंचल मन पर नियन्त्रण करना निःसंदेह अत्यन्त ही कठिन कार्य है। इस पर नियन्त्रण करने के लिए निरन्तर चिरकाल तक अधिकाधिक विवेकयुक्त वैराग्य तथा योग, भक्ति तथा ज्ञान की धैर्ययुक्त साधना की आवश्यकता है, तभी साधन सम्पन्न जिज्ञासु के विशुद्ध चित्त में गुरुकृपा से आत्मतत्व प्रकाशित होता है। यह कार्य किसी एक जन्म की उपलब्धि नहीं, अपितु अनेकों जन्मों की साधना के उपरान्त ही सम्भव है, इसका संकेत भी भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं दिया कि –

प्रयत्नात् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिम्।।

अर्थात् अनेकों जन्मों की निरन्तर साधना के परिणामस्वरूप जब योगी के चित्त से मायिक गुणविकारों का मलावरण नष्ट हो जाता है तथा चित्तवृत्तियों का चित्त से नितान्त अभाव हो जाता है, तभी आत्मतत्व का अनुभव सम्भव है, महर्षि पतंजलि ने इस स्थिति का वर्णन किया है कि–

ततः पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेः इति।।

अर्थात् साधना की सिद्धि के बाद मायिक गुण निष्क्रिय होकर अपनी कारणभूता प्रकृति में लय हो जाते हैं जिससे मन की मनोवृत्तियाँ स्वतः नष्ट हो जाती हैं, मन के इस अमनीभाव में द्वैतसंसार का लोप हो जाता है और तब उस अद्वैतावस्था में चित्त आत्मतत्व से ही प्रकाशित रहता है।

अब प्रश्न उठता है कि एक जन्म की साधना के संस्कारों पर मृत्यु का क्या प्रभाव होता है, इस पर हमें परमात्मा की वाणी पर विश्वास करना होगा कि ऐसे साधक का अगला जन्म उसकी साधना के अनुकूल परिस्थिति में होता है जहाँ वह–

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि :।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।।

(गीता 6)

अर्थात् अग्रिम जन्म में साधक पूर्वजन्मों के अर्जित आध्यात्मिक संस्कारों को स्वत: प्राप्त कर अपनी अग्रिम साधना में अग्रसर होकर योगसिद्धि की ओर प्रगति करता है। पूर्वजन्मों के अभ्यास के फलस्वरूप उसका चित्त विशुद्ध होता जाता है। इसीलिए योग का जिज्ञासु शब्दज्ञानियों की तुलना में श्रेष्ठतर है। मृत्यु के समय संस्कारों की प्रक्रिया है कि–

यच्चित: तेनैष: प्राणमायाति प्राण: तेजसा युक्त:।
सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति।।

अर्थात् मृत्यु के समय इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि चित्त में लय हो जाती हैं तथा उनके संस्कारों के साथ चित्त प्राण में लीन हो जाता है। प्राण स्थूल शरीर को त्याग कर, आत्मतेज से युक्त होकर संस्कारों से प्रेरित होकर संकल्पों के अनुकूल लोक को गमन करता है। यह तेजोमय प्राणशरीर संस्कारों की गन्ध के साथ माया से प्रेरित हुआ यथोचित योनि में प्रवेश कर जाता है। इस आवागमन की मायिक प्रक्रिया का श्रुतिप्रमाण है कि –

अथ खलु क्रतुमय: पुरुष: यथा क्रतुरस्ति लोके पुरुषो भवति।
तथेत: प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत मनोमय: प्राणशरीर: भारूप:।।

(छान्दो. उप. 3/14/2)

अर्थात् यह जीवात्मा संकल्पप्रधान है, जैसा संकल्प होता है, उसी के अनुसार इस लोक में तथा परलोकों में उसकी गति होती है। उसके कर्माशय में असंख्य संकल्पों का संचय रहता है किन्तु जो संकल्प वरीयता के आधार पर प्रारब्ध में सम्मिलित हो जाते हैं, वह क्रियान्वयन होकर फलरूप हो जाते हैं। इसी कारण जीवात्मा अपने मनोमय तथा प्राणमय कोषों के अनुकूल व्यवहार में प्रवृत्त होती है।

यह संस्कार दो प्रकार के होते हैं, प्रथम वह संस्कार जो भोगफल के बीजरूप होते हैं तथा फल देने के उपरान्त नष्ट होते जाते हैं तथा दूसरे वह संस्कार जो आध्यात्मिक होते हैं, वह नष्ट नहीं होते अपितु संचित कोष में संचित हो जाते हैं। इन बहुमूल्य संस्कारों के विषय में भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि –

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमपि अस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वर:।
ग्रहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।

इन आध्यात्मिक संस्कारों (I) का आरम्भ तो होता है किन्तु नाश नहीं होता और न यह

भोगसंस्कारों से प्रतिबाधित होते हैं अपितु पूर्व आध्यात्मिक संस्कारों के कोष में संचित हो जाते हैं। अत: जैसे बूंद–बूंद से समुद्र बनता है, वैसे ही यह कोष भवसागर को पार करने की नाव बनाकर तैयार कर देता है। यह कोष भी चित्तरूपी इन्टरनेट (Internet) की एक वेबसाइट जैसा है जो कि स्थूलशरीर त्यागने के बाद भी चित्त के साथ प्राणशरीर का अंग बना रहता है और जैसे वायु के साथ गन्ध भी गमन करती है वैसे ही यह संस्कार भी साथ–साथ गमन करते हैं। एक और गूढ़ रहस्य महर्षि पतंजलि ने प्रकट किया है कि –

जातिदेशकालव्यवहितानांमपि आनन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयो: एकरूपत्वात्॥

(योगदर्शन 4/9)

अर्थात् स्मृति तथा संस्कार एक रूप तथा एकीभाव वाले तत्व हैं। इस कारण चित्त में संचित संस्कारों पर शरीर त्यागने अथवा नया शरीर धारण करने पर, स्थानविशेष के परिवर्तन का अथवा कालान्तर का भी कोई व्यवधान तथा प्रभाव नहीं पड़ता। अत: उनकी निरन्तरता तथा समय पर स्मृति का उदय हो जाना, यह सब स्वाभाविक रूप से होता है। इसलिए किसी भी जन्म की साधना के संचित संस्कार अन्य किसी अनुकूल जन्म में स्मृति के रूप में प्रकट हो जाते हैं।

स्मृति तथा संस्कारों का खेल बहुत विचित्र है। परमात्मा की माया की इस लीला को समझना असम्भव सा है। भगवान ने स्वयं इसे स्वीकार किया है कि –

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

अर्थात् मेरी गुणमयी माया पर विजय अत्यन्त कठिन है। जो मेरा आश्रय लेकर मेरी शरणागति प्राप्त कर लेते हैं, वही इस माया से मुक्त हो पाते हैं। माया से मुक्ति का अर्थ है कि हमारे चित्त में माया के गुणविकारों के रूप में जो अनन्त भाव चित्त का दृश्य बने हुए हैं, उन दृश्यों यानि चित्तवृत्तियों से चित्त को मुक्त कर उसे केवल आध्यात्मिक संस्कारों से परिपूर्ण करना ताकि आत्मा का निर्विकार सत्यस्वरूप ही उसमें प्रकाशित हो। चित्त में संस्कारों को संचित करने की क्षमता असीमित तथा अनन्त है। महर्षि पतंजलि ने इसकी पुष्टि की है कि –

चित्तं असंख्यवासनाभि: चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात्॥
द्रष्ट्रदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्॥

(योगदर्शन 4/23,24)

अर्थात् चित्त में अनन्त वासनाओं के संस्कार संचित रहते हुए भी उसमें नवीन संस्कारों को संगृहीत करने की असीमित योग्यता है तथा सृष्टा तथा दृश्य की एकीकारिता को प्रकाशित करते हुए भी सर्वविषयों को ग्रहण करने वाला बना रहता है। यही मायाकृत चित्त की अद्भुत लीला है। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि चित्तरूपी समुन्दर में सतह पर स्वभावजनित

वरीयता के आधार पर लहरें उठती रहती है। यही लहरें द्वैतसृष्टि को जन्म देती हैं। हमारे शास्त्रों का कथन है कि इस मायावी सृष्टि में परमात्मा ने ही अपनी माया के द्वारा अपने ही ऊपर जीवात्मा को विकल्पित किया है, क्योंकि –

आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथक्भवेत्।
तथात्मा एको हि अनेकश्च जलधारेषु इवांशुमान्।।

आत्मा हि आकाशवत् जीवैः घटाकाशैरिव उदितः।
घटादिवच्च संघातैः जातौ एतन्निर्दशनम्।।

प्राणादिभिः अनन्तैश्च भावैः एतैः विकल्पितः।
माया एषा तस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वयम्।।

जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भावान् पृथग्विधान्।
बाह्यान् आध्यात्मिकान चैव यथाविद्यः तथास्मृति।।

आत्मा क्षेत्रज्ञसंज्ञो हि संयुक्तः प्राकृतैः गुणैः।
तैरेव विगतः शुद्धः परमात्मा निगद्यते।।

पश्यति आत्मानं अन्यच्च यावद्वै परमात्मनः।
तावत् सम्भ्राम्यते जन्तु मोहितो निजकर्मणा।।

अर्थात् जिस प्रकार एक ही आकाश भिन्न–भिन्न घटों में भिन्न–भिन्न घटाकाशों में बँटा सा दिखाई देता है, उसी प्रकार एक ही परमात्मा भिन्न–भिन्न शरीरों की उपाधियों में अनन्त जीवात्माओं में विभक्त सा प्रतीत होता है, किन्तु जैसे असंख्य जलाशयों में एक ही सूर्य अनेक सूर्यों के रूप में दिखाई देता है, वैसे ही एक ही आत्मा मायाकृत उपाधियों में जीवों के रूप में अनेक हो गया है। वस्तुतः मायासृजित प्राणादि अनन्त भाव यानि स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थ अनन्त उपाधियों में एक ही आत्मा पर विकल्पित है तथा अज्ञान के अन्धकार में सत्य भासित हो रहे हैं। अतः स्वयं परमात्मा ही अपनी ही माया की रचना में सम्मोहित सा व्यवहार कर रहा है, क्योंकि वह कई रूपों में अभिव्यक्त है जैसा कि भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं संकेत किया है कि –

उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मा इति चाप्युक्तः देहे अस्मिन् पुरुषः परः ॥

(गीता 13)

अर्थात् प्रत्येक शरीर में रहने वाला चैतन्यात्मा स्वयं परमात्मा ही है जोकि कूटस्थ द्रष्टा, शक्तिदाता प्रेरिता, शासनकर्ता भर्ता तथा जीवभाव में विकल्पित भोक्ता के रूप में सदैव विद्यमान रहता है। इसी उद्देश्य के लिए सृष्टि से पूर्व ही माया के अनन्त भावों की कल्पना कर द्वैतसृष्टि का निर्माण हुआ तथा उसमें दोनों प्रकार के संस्कार यानि सांसारिक भोक्ता के संस्कार तथा अपने सत्यरूप के ज्ञान के लिए आध्यात्मिक संस्कारों का विधान भी बनाया। अतः जब तक आत्मा तथा मायिक तत्वों की तदाकारता है और व्यवहार में दोनों संयुक्त होकर बुद्धिबोधात्मक आत्मा हैं तब तक माया का बन्धन है और जैसे ही ज्ञानज्योति से भ्रान्ति का अन्धकार नष्ट हो जाता है तब परमात्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकाशित हो जाता है। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक बुद्धिबोधात्मक जीवात्मा मायाकृत भोगों में आसक्त होने के कारण माया के वशीभूत अपने को परमात्मा से भिन्न समझती है तथा कर्मसंस्कारों के पाश में बँधी हुई सी गुणविकारों की देहरूपी दलदल में फँसती चली जाती है। परमात्मा की कृपा से यदि मानवशरीर प्राप्त हो गया, संचित आध्यात्मिक संस्कारों से सद्‌गुरु की सन्निधि प्राप्त हो गयी तथा सद्‌गुरु द्वारा निर्धारित साधना में अभ्यासरत होकर गुरुदेव के चरणों में समर्पणभक्ति की अमृतधारा से चित्त निर्मल हो गया तभी परमात्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप की प्राप्ति होगी।

संक्षेप में, मैं यह बताना चाहता हूँ कि हमारा यह शरीर प्रकृति द्वारा निर्मित एक अद्‌भुत कम्प्यूटर (Computer) है जिसकी पाँच महत्वपूर्ण इकाइयाँ (Units) हैं। प्रथम इकाई शक्ति (Power unit) है जो बुद्धिरूपी दूसरी कन्ट्रोल इकाई (Control unit) में गुप्त स्वयं परमात्मा है। तीसरी स्मृति इकाई (Memory unit) है जो कि संस्कार के रूप में मन में गुप्त है, चौथी इकाई गणितीय (Arithmetic unit) है जो गुणात्मक माया के रूप में मन में ही गुप्त है और पाँचवी इकाई (Input / Output unit) है जो इन्द्रियों के रूप में कार्य करती है। यह सभी सूक्ष्मरूप में विद्यमान रहती हैं और स्थूल शरीर में चित्त द्वारा प्रकाशित तथा गतिमान रहती हैं। यही मायावी परमात्मा का मायारूपी खेल है।

● ● ●

सूचना

आप सभी को विदित है कि आगामी वर्ष 14 जनवरी 2013 से प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम स्थल पर महा-कुम्भ का मेला लगने जा रहा है। प्रतिवर्ष की भाँति इस अवसर पर भी श्री सिद्धगुफा योग साधन मंदिर इलाहाबाद की ओर से अपने गुरुदेव परम पूज्य 'योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज' के नाम से मेला परिसर में योग-शिविर भी लगेगा।

समस्त सम्बद्ध ब्रह्मचारीगण एवं गुरु भाई-बहनों से विनम्र निवेदन है कि वे अपनी इस इलाहाबाद शाखा को यथा शीघ्र यह सुचित करने की कृपा करें कि उनके क्षेत्र से कम से कम कितने भाई-बहन, कब से और कितने समय के लिए शिविर में पधारने का प्रोग्राम बना रहे हैं, जिससे कि हम लोग तदनुसार उनके रहने व ठहरने की यथा सम्भव समुचित व्यवस्था करने का प्रयास कर सकें।

क्षेत्रीय आश्रमों के जो ब्रह्मचारीगण एवं गुरुभाई-बहन मेले में स्वतंत्र रूप से अपना अलग शिविर अथवा आवासीय निवास की व्यवस्था चाहते हों वे इसके लिए अपनी ओर से सीधे 'प्रभारी कुम्भ मेला अधिकारी' कुम्भ-मेला 2013, इलाहाबाद के पते पर अपना आवेदन पत्र भेजें।

मंत्री
(विनय मालवीय)
श्री सिद्धगुफा योग साधन मंदिर
60-/C/1/121, जौंधवल रोड,
मेंहदौरी कॉलोनी
तेलिया गंज - इलाहाबाद - 211004
फोन - 2545011
मो. - 9415647372

ग्राहकों को सूचना

जो गुरु भाई बहिन सन् 1998 से पूर्व से सिद्धयोग पत्रिका के ग्राहक हैं उनसे निवेदन है कि उन्हें 13–14 वर्षों से पत्रिका भेजी जा रही है। कागज के दाम अत्यधिक बढ़ रहे हैं। अतः उन्हें पुनः रु. 900/– शुल्क भेजना चाहिए ताकि उनकी सदस्यता बनी रह सके। अन्यथा पत्रिका रोकी जा सकती है। निम्न सदस्य हैं जिन्हें शुल्क भेजना है–

1. श्री कृष्ण शर्मा – गिरावर, जि. रोहतक (हरि.)
2. सन्तोष कु. बस्सी – गुड़गाँव
3. गजराज सिंह – मंगला, कानपुर देहात
4. डॉ. विजय सिंह – गोरखपुर
5. केशव उपाध्याय – वाराणसी
6. दामोदर प्रसाद ओटवाणी – झाँसी
7. बल्देव कु. कुकरेजा – झाँसी
8. रमेश मेहता – मण्डी, हिमाचल प्रदेश
9. श्रीमति सुदर्शन कुमारी – फरीदाबाद (हरि.)
10. श्रीमति विद्या कौशल – मण्डी, हिमाचल प्रदेश
11. विश्वनाथ दयाल – कानपुर
12. आर.पी. दूबे – गोरखपुर
13. डॉ. कैलाशनाथ शर्मा – वाराणसी
14. आमरेन्दर रोहतास शर्मा – जि. रोहतक (हरि.)
15. शान्ति हेण्डलून – पानीपत (हरि.)
16. श्री ब्रह्मचारी बृजमोहन वशिष्ठ – अलीगढ़
17. खुदबुद ठेकेदार – वाराणसी
18. दयालु मुनि जी – भिवानी (हरि.)
19. जय प्रकाश कसल – पानीपत (हरि.)
20. सत्य प्रकाश गुप्ता – भोपाल (म.प्र.)
21. के.के. शर्मा, जनकपुरी, नई दिल्ली
22. नरेन्द्र चौधरी – शाहदरा दिल्ली
23. गनेश कुमार– रानीबाग, दिल्ली
24. विनय सिंजरिया – झाँसी
25. अशोक वर्मा – दिल्ली
26. रामावतार सुगन्धा – दिल्ली
27. विनय कुमार अग्रवाल – दिल्ली
28. विद्यारण्य – दिल्ली
29. शिवानी नागेश – अहमदाबाद (गुजरात)
30. सज्जन कुमार अग्रवाल – धनबाद, झारखण्ड
31. अचल बावला – दिल्ली
32. प्रो. पी.डी. शर्मा –मुम्बई
33. वी.के. सक्सेना – भिण्ड (म.प्र.)
34. विवेक बंसल – गाजियाबाद (उ.प्र.)
35. पवन कुमार पुरी – काँगड़ा
36. विजय पुरी – काँगड़ा
37. हरीश पठानिया – काँगड़ा
38. कुलदीप सचदेवा – काँगड़ा
39. आर. के. शर्मा – काँगड़ा
40. डॉ. पुष्प राज शर्मा – मण्डी, हिमाचल प्रदेश
41. श्रीमति अरुणा सिंह – नई दिल्ली
42. कुन्दनलाल अग्रवाल – रुद्रपुर, नैनीताल
43. एम. डी. कात्रे – झाँसी
44. मानचन्द गुप्ता – कुरुक्षेत्र (हरि.)
45. उमाशंकर गुप्ता – झाँसी
46. साधुराम – काठमण्डी रोहतक
47. धर्म सिंह हर्षवर्धन – दिल्ली
48. खगेश कुमार – गोहाना सोनीपत
49. सदाशिव मन्दिर – काँगड़ा
50. नन्दलाल शर्मा – मण्डी, हिमाचल प्रदेश
51. नरेश चन्द दास – कटक, उड़ीसा
52. प्रदीप कुमार वालुखेड़ा – अलीगढ़
53. कैलाश चन्द सर्राफ – कोलकाता
54. रमेश चन्द शर्मा – हिसार
55. हरे कृष्ण गोस्वामी – दिल्ली
56. गुलशन राय पाहूजा – दिल्ली
57. अंजू अरोड़ा – नई दिल्ली
58. नरेन्द्र कुमार भारद्वाज – इन्दौर
59. प्रताप वाच हाउस – नजफगढ़, दिल्ली
60. एन. आर. यादव – वाराणसी
61. प्रदीप कुमार – कन्नौज
62. साहब सिंह सैंगर – जालौन
63. विमलता – कोलकाता
64. भरत कुमार मिश्र – कानपुर
65. जे. एल. गर्ग – जीन्द, हरियाणा

(शेष अगले अंक में देखें)

याद रखो

भगवान् ने कृपा करके हमें जो मानव शरीर प्रदान किया है, यह भगवान् के प्रेम को प्राप्त करने का शुभ अवसर है। यदि हमने यह अवसर खो दिया तो अपना सर्वस्व गवाँ दिया। अतएव बड़ी गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। एक-एक श्वांस जो जा रहा है, वह हमें मृत्यु के निकट ले जा रहा है; शरीर के नाश का उपक्रम हो रहा है। जैसे-जैसे समय बीत रहा है, हम सोचते हैं- हम बड़े हो रहे हैं पर समय बीतने के साथ हम बड़े नहीं हो रहे हैं, हम छोटे हो रहे हैं; हमारी आयु बढ़ नहीं रही है, घट रही है। कब मृत्यु हो जाय, कुछ पता नहीं। अतएव मृत्यु के आने से पहले-पहले हमारा यह धर्म है, परम कर्तव्य है कि इस जगत् के समस्त झंझटों से अपने को मुक्त करके भगवान् में लग जायँ, मन को भगवान् में लगा दें। जहाँ मन भगवान् में फँसा कि जगत् से हटा। भगवान् में आसक्ति हुई कि जगत् से विरक्ति अपने-आप हो जायेगी। जहाँ प्रकाश आया कि अन्धकार मिटा- यह नियम है।

भगवान् में लगने का प्रयत्न हमें स्वयं करना होगा; दूसरा कोई हमारे लिये यह करेगा नहीं, कर सकता नहीं। यह अपने करने से होगा, अपनी इच्छा से होगा और होगा अवश्य, यदि हम करना चाहेंगे। निश्चित-निश्चित सिद्धान्त यह है कि भोग मिलने सहज नहीं हैं, पर भगवान् मिलने सहज हैं, यदि हम उन्हें प्राप्त करना चाहें। भक्त की चाह भगवान् में प्रतिफलित हो जाती है। शास्त्र की घोषणा है, भगवान् की घोषणा है- 'जो मेरा हो गया है, मैं उसका हो जाता हूँ।'

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2012-14 SEPTEMBER 2012

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

न तथा शीतल सलिलं न
चन्दनरसो न शीतला छाया।
प्रह्लादयति च पुरुषं
यथा मधुरभाषिणी वाणी।।

(भविष्य पुराण ब्राह्मपर्व 73/48)

ठंडा जल, चन्दन का रस अथवा ठंडी छाया भी मनुष्य के लिए उतनी आह्लाद जनक नहीं होती, जितनी कि मीठी वाणी।

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री मनमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14568.
सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा